श्री स्वामी करपात्री जी महाराज
अभिनव शंकर
CHICAGO
CHICAGO
धर्म संघ प्रकाशन
स्वामी पाड़ा, मेरठ शहर

ग्रन्थ रचना काल

ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे श्रीश्वेत वाराह कल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलि-युगे कलि प्रथम चरणे जम्बू द्वीपे भरतखण्डे भारत वर्षे बौद्धावतारे आर्यावर्तैक-देशान्तर्गते उत्तर प्रदेशे गंगा-यमुनयोर्मध्ये गणमुक्तीश्वर पुण्य क्षेत्रे मयराष्ट्र नाम नगरे वृष नाम विक्रम संवत्सरे २०४५ संख्यके, श्रीमच्छंकर संवत्सरे २४५७ संख्यके, उत्तरायणे सूर्ये अधिक ज्येष्ठ मासे शुभे शुक्ल पक्षे दशम्यां गुरुवासरे सिद्धियोगे, निगमागमादि समस्त शास्त्र पारावार पारीणानां, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्याणाम् अनन्तश्री विभूषित धर्मसम्राट स्वामि श्री हरिहरानन्द सरस्वती (श्री करपात्र स्वामि) महाभागानां स्मृत्यर्थं हरितसगोत्र-समुत्पन्ननेन श्री कृष्णप्रसाद शर्मणा सम्पादितं

'अभिनवशंकर स्वामि श्री करपात्री जी' नामक

ग्रन्थोपायनं प्रकाशमगात्

अभिनव शंकर

સમરીતિર્મહાતેજાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ ।
જયતાઽજ્ઞાનનીનાશો વેદવેદ્યો મહામતિઃ ॥

स्वामी करपात्रीजी

स्मृति-ग्रन्थ

सम्पादक
कृष्ण प्रसाद शर्मा

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

अनन्तश्रीविभूषित यतिचक्रचूड़ामणि परमवीतराग सन्यासी
वेदपुरुष, वाचस्पति धर्मसम्राट् ब्रह्मलीन स्वामी
श्री हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्री जी महाराज
की पावन स्मृति में
यह शब्द सुमनाञ्जलि
सादर समर्पित है !

'कृष्ण प्रसाद'

हमारे प्रेरणा स्रोत :

१—ब्रह्मलीन अभिनवशङ्कर धर्मसम्राट्, यतिचक्र चूड़ामणि, श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती, श्री करपात्री जी महाराज,
वेदानुसंधान-केन्द्र, केदार घाट, काशी ।

२— ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज
ज्योतिष्पीठ, उत्तराम्नाय, बद्रिकाश्रम ।

३— ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीमदभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज,
द्वारका-शारदापीठ, पश्चिमाम्नाय, द्वारका-गुजरात ।

हमारे मार्गदर्शक

१— अनन्त श्री विभूषित श्री मज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य, श्री स्वामी निरञ्जन देव, तीर्थ जी महाराज, गोवर्धन पीठ, पूर्वाम्नाय, जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) ।

२— अनन्त श्री विभूषित श्री मज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य, श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज ।
सम्प्रति - उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ बद्रिकाश्रम एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका-शारदापीठ उभयपीठाधीश्वर, जोशीमठ गढ़वाल ।

३—अनन्त श्रीसमलंकृत परम भागवत संत श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज,
बिहारघाट, बुलन्दशहर ।

श्री हरि:

आमुख

आत्मा की अमरता सभी मतों में मान्य है फिर भी अज्ञानी देह-तादात्म्य भावना से जन्म और मरण के बन्धन में आता है। ज्ञानी देहाध्यास का परित्याग कर इस संसार चक्र से बाहर निकल जाता है। इस कारण जीवित अवस्था में जीवन्मुक्त और देह त्यागानन्तर घटभङ्ग की अवस्था में घटाकाश के महाकाश में विलय के समान नित्य शुद्धमुक्त आत्मस्वरूप में विलीन हो जाता है इसे ब्रह्म निर्वाण कहा गया है।

हंस नीर क्षीर विवेक के समान आत्मानात्म विवेक कर चित्सदानन्द में सदा विलीन रहता है जैसे सर्प अपनी केंचुल को बल्मीक में स्वयं छोड़कर उसे स्वयं देखता है, वैसे ही ज्ञानी इस कल्पित पांचभौतिक स्थूल सूक्ष्म देहभाव और अनाद्यविद्या कल्पित कारण देहभाव को फेंककर "**चिदानन्दाभिख्यं रसयति रसानन्द जनवान्**" चिदानन्द रस का आस्वादन करता है।

संसारी प्राणी जिस शरीर निर्गमन यात्रा को मृत्यु समझकर भयभीत, असहाय और दुःख-ग्रस्त होता है, वहीं पर परमहंस, चिदानन्दरस के आस्वादन का रसास्वादन करता हुआ मृत्यु प्रलय का साक्षी बनकर मृत्यु को सदा के लिए समाप्त कर सदा सदानन्द, सदाचिदानन्द और सदा स्वात्मानन्द में निमग्न हो जाता है।

वृहदारण्यक की श्रुति में कहा है "न तस्य प्राणा: उत्क्रामन्ति आत्मैव समवलीयते" आत्माराम परमनिष्काम आप्तकाम ब्रह्मज्ञ के प्राणों का उत्क्रमण ही नहीं होता,—सर्वोपाधिविवर्जित, सर्वपरिच्छेद शून्य हो इसी लोक में समस्त आवरणों का क्षय कर अपरिछिन्न नित्यसत्, नित्यचित् तथा नित्यानन्द में विलीन हो जाते हैं। इस कारण परमपूज्य स्वामीचरण परमहंस गति में सदा विलास कर स्वेच्छया-र्जित देहाध्यास का परित्यागकर अपने नित्यमुक्त शुद्धब्रह्मस्वरूप में विलीन हुए। ऐसी महाविभूति के सम्पर्क से भूतधात्री वसुन्धरा पुण्यवती हुयी और जो जीव इस महाविभूति के सम्पर्क में आए उनका सम्पर्क भी अमोघ हो गया।

धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी का इन्हीं आदि और अन्त के दो बिन्दुओं के बीच में प्राय: ७५ वर्ष की अवधि रेखा में सम्बद्ध जीव घटाकाश महाकाश आदि के समान कभी अपने असीम महाकाश से पृथक नहीं हुआ। आद्यभगवत्पाद शंकराचार्य के समान इस व्यक्तित्व में भी गागर में सागर भरा ही रहा। जगत की विविधता को देखते इस महापुरुष की निःसीम शक्ति भी अनेक क्षेत्रों में फूटकर प्रसारित हुयी। उनकी सरस सरस्वती रसमय परब्रह्म से प्रसारित प्रथम भगवत्तत्त्व के रूप में अवतीर्ण

हुई, तदनन्तर अनादि निधनावाक् वेदवाणी के शाश्वत चिन्मय रूप की व्याख्या के रूप में प्रफुल्लित हुयी। श्री स्वामी जी की लेखनी से अनेक गम्भीर दुरुह तथा अखिल विश्व के उपयोगी साहित्य का सृजन हुआ। इस महापुरुष की लेखनी, वाणी, जीवन पट के सभी पटाक्षेप विश्व के सन्तप्त जीवों की सन्तापशान्ति के लोकोत्तर साधन हैं। इतिहास ऐसे महापुरुषों को सहस्राब्दियों के अन्तर से ही प्रकट करता है।

आद्य श्री शङ्कराचार्य के बाद यह अभिनव शङ्कराचार्य हिन्दू समाज एवं भारत राष्ट्र की इस विषम संकटपूर्ण परिस्थिति में एक मात्र आशा किरण थी जो अब लुप्त सी दीखती है प्रकाशन ने इस ग्रंथरत्न "अभिनवशङ्कर श्री स्वामी करपात्री जी" के द्वारा इस आशा किरण का प्रकाश जन-जन तक पहुंचाने और उनके सभी क्रिया कलापों का विवरण प्रस्तुत कर इसे इतिहास एवं साहित्य का अभिन्न अङ्ग बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। भगवान भूतभावन श्री विश्वनाथ सब का मङ्गल करें।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वेसन्तु निरामया: ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग्भवेत् ।।

नन्दनन्दनानन्द सरस्वती

श्री हरि:

आत्म निवेदन

'महापुरुषों के जीवन चरित्र लिखने से लेखनी पवित्र होती है, मन पवित्र होता है ---- लिख अवश्य लिख' —यह उद्‌बोधक आशीर्वचन हैं ब्रह्मलीन जगद्‌गुरुशङ्कराचार्य श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के, जो उन्होंने मुझे सन् १९४६ में कहे थे। तब से लेकर आज तक आध्यात्मिक सनातन साहित्यावलोकन, संकलन, लेखनादि के कार्य की ओर उन्मुख हो गया। जिसके फलस्वरूप 'अमरवाणी' त्रैमासिक दो खण्ड १९४६, 'मासिक अमरवाणी १९५४', 'करपात्री स्वामी' १९५८, 'जगद्‌गुरुगौरव' १९७९, 'करपात्री एक अध्ययन' १९८२, 'करपात्री चित्रावली' १९८३, 'औघड़नाथ शिवगौरव ग्रन्थ' १९८२, 'भगवान श्रीराम-रामराज्य और सरिता' १९८४, का प्रकाशन हो चुका है। इसी प्रसंग में धर्मसम्राट से सम्बन्धित लेख, भाषणादि के रूप में पर्याप्त सामग्री संकलित हो गयी जिसका सुफल 'अभिनव शंकर स्वामी श्री करपात्री जी'—स्मृति ग्रंथ के रूप में आप के करकमलों में प्रस्तुत हो सका है। अन्य ग्रन्थ अभी प्रकाश्य हैं।

धर्मसम्राट् जैसी महान अलौकिक विभूति के विचार दर्शन, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, वैदुष्य आदि की गहराइयों एवं ऊँचाइयों तक पहुँचकर उस अथाह सागर में अवगाहन करके मुक्तामणियों को निकालना बड़े बड़े दिग्गजों के लिये भी सरल नहीं हैं। जो वे महापुरुष कहते थे, जो वे करते थे, जो लिखते थे उसको सुनकर, देखकर, पढ़कर सर्वसाधारण को जो आनन्दानुभूति होती थी उसका याथातथ्यात्मक प्रस्तुतीकरण किसी मनस्वी-तपस्वी का ही काम हो सकता है, मेरे जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति के वश की बात नहीं। परन्तु जगद्‌गुरु जी के वे प्रेरक वचन मुझे बारम्बार प्रेरित करते थे। कुछ साहस करके पुनः-पुनः लेखन कार्य में जुट जाता पत्राचार होता रहा, सामग्री संकलित होती रही। प्रभु चरणारविन्द में नित्य यही निवेदन करता रहा कि प्रभु इस महान कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता प्रदान करें। तभी दिनांक २१-४-८२ को धर्मसम्राट् ने स्वप्न में दर्शन देकर मेरे मन में जो उत्साह भर दिया उसका वर्णन कठिन है वे एक दिव्यविमान जैसे उड़ने वाले किसी यान पर खड़ाऊँ पहने गंगा स्नानार्थ जाने को यान की सीढ़ियां चढ़ने लगे तो करबद्ध होकर मैंने कहा 'महाराज आपका स्मृति ग्रंथ निकालने का संकल्प है।' वे बोल —'अरे एक ठो निकाला तो है तुमने वह अध्ययन' मैंने निवेदन किया, महाराज वह तो आप के ही विचारदर्शन का संग्रह मात्र है संक्षेप में जिसका विमोचन आप के करकमलों द्वारा दिनांक ११-२-८२ को होना था न हो सका, अब तो 'जगद्‌गुरुगौरव' की भांति आप श्री की स्मृति में 'स्मृतिग्रंथ' प्रकाशित करने का विचार है —कृपया उसके लिये आशीर्वाद प्रदान करने की कृपा करें।' बोले —'हाँ, हाँ अवश्य निकालो और देखो इन ग्रंथों की जिल्द बंधवा लेना और पुस्तकालय में सुरक्षित रखना—ऐसा भीषण समय आने वाला है कि वेदों से लेकर हनुमान प्रसाद पोद्दार (कल्याण) तक को कोई नहीं पढ़ेगा—अज्ञानान्धकार के उस समय में यह ग्रंथ ही जनता का मार्गदर्शन करेंगे —अवश्य प्रकशित करो', यह कहकर विमान से उड़कर चले गये और पुस्तक छप गयी, जिल्द

बंध गयी मैं लेकर जल्दी जल्दी धर्मसंघ पुस्तकालय मोरीपाड़ा, मेरठ में रखने को जैसे पहुँचा तो देखा महाराज जी गंगारज का त्रिपुण्ड लगाये, गोश्रृंग हाथ में लिये कुएँ की मेढ़ पर महारुद्राभिषेक कर रहे हैं मैंने नमोनारायण की -- संकेत से आशीर्वाद दिया महाराज जी ने. और नेत्र खुल गये।

पुनः सम्पादन कार्यारम्भ हो गया। अन्य बाधाओं एवं संकटों के अतिरिक्त एक यह समस्या उठ खड़ी हुयी कि 'करपात्री-एक-अध्ययन' की सामग्री की पुनरावृत्ति न हो। महाराज श्री के प्रकाशित ग्रंथों में छपी सामग्री यथावत देने से ग्रंथ की मौलिकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता। पूर्व प्रकाशित जीवन चरित्र में महाराज श्री ने अनेक त्रुटियां बतायीं थीं जिनको ठीक करने का कार्य यद्यपि महाराज जी के दिल्ली प्रवास के समय सम्पन्न हो चुका था परन्तु 'कृतित्व' वाले अंश के बारे में पिष्ट-पेषण वाली स्थिति बन रही थी। तब पुनः दिनांक ६-५-८३ को महाराज जी स्वप्न में पधारे, रुग्ण थे हाथ में बेंत लेकर चल रहे थे, मुझसे बोले हमें धर्मसंघ कार्यालय के भवन के ऊपर ले चलो पीछे के मार्ग से' -- मैं चला कई स्थानों पर चढ़ना पड़ा सहारा देना पड़ा। एक स्थान पर तो मैंने पीठ पर चढ़ाकर ऊपर चढ़ाया तो छत पर पहुँचकर बोले--'ठीक है भाई' और आँख खुल गयी। इसी प्रकार दिनांक ६ व ७-६-८३ को पुनः महायज्ञ एवं धर्मसंघ सम्मेलन के शुभावसरपर पूज्यपाद जगद्गुरुशंकराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज के साथ दर्शन देकर प्रगति पूछी--तात्पर्य यही है कि मेरे जैसे अनपढ़ अल्पज्ञ व्यक्ति के प्रेरणा स्रोत स्वयं वे दोनों महापुरुष ही रहे। उन्हों के आशीर्वचनों का सम्बल लेकर यह सामग्री संजोयी गयी। प्रश्न था इसके प्रकाशन का सो हमारे प्रकाशन के अध्यक्ष स्वनामधन्य श्री प० श्यामसुन्दर बाजपेयी जी ने इसे पूर्ण करने का संकल्प किया। परन्तु इस बार व्यवधान भी खूब उपस्थित हुए उनके मार्ग में जिनके कारण प्रकाशन कार्य स्थगित हो जाता। प्रकाशन तिथि की घोषणा के उपरांत भी किन्हीं अपरिहार्य कारणों से प्रकाशन स्थगित करना पड़ता --वैद्य श्री बाजपेयी जी स्वयं भयंकर रूप से रोगाक्रांत हो गये--चिन्ता व्याप्त थी कैसे होगा यह पुनीत कार्य सम्पन्न? रुग्णावस्था में भी उनका आत्मबल और दृढ़ संकल्प ही था, जो सम्पादन कार्य और मुद्रण कार्य येन केन प्रकारेण चलता रहा--यद्यपि उन्हें चलने, फिरने, लिखने, पढ़ने तक की मनाही थी। उनका कथन था कि--इस ग्रंथ का प्रकाशन तो मुझे करना ही है और स्वस्थ होने पर उनके यह शब्द कि--'महाराज श्री के इस कार्य को पूरा करने के लिये ही मेरा जीवन बचा है' --हृदय को आन्दोलित करने वाले थे। अनेक महत्वपूर्ण प्रसंग, लेख, घटनायें, चित्र, पत्र, विवरण आदि को छोड़ना पड़ा। अनेक महापुरुषों, भक्तों, विद्वानों तक हमारी पहुँच नहीं हो सकी जिस कारण उनसे महत्वपूर्ण सामग्री की प्राप्ति इस पावन ज्ञानयज्ञ में न हो सकी उन सभी महानुभावों से विनम्रतापूर्वक क्षमा याचनापूर्वक करबद्ध निवेदन है कि वे सदैव अपनी कृपा बनाये रहें। महत्त्वपूर्ण सामग्री के साथ-साथ अनेक चित्रों के प्रकाशन का लोभ भी संवरण करना पड़ा है, परन्तु जो कुछ भी इन तीन खण्डों में प्रस्तुत है, आशा है पाठकों के लिये उपादेय होगा, रुचिकर होगा, संग्रहणीय होगा।

अन्त में इस कार्य में सहयोग प्रदान करने वाले सभी महानुभावों को हृदय से धन्यवाद प्रदान करते हुए आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वह अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखेंगे।

इत्यलम

निवेदक

कृष्ण प्रसाद शर्मा

१५०, चैतन्यपुरम्
मेरठ-२

प्रकाशकीय निवेदन

गीताजयन्ती संवत् २०३५ तदनुसार १० दिसम्बर सन् १९७८ का आज से लगभग १० वर्ष पहले प्रकाशन ने अपनी आधारशिला के रूप में 'जगद्गुरुगौरव' ग्रंथ का प्रकाशन किया था। ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ अनन्त श्री समलंकृत श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज मेरठ के लिये और सारे देश के लिये वरदान स्वरूप थे। उनके चरित्र एवं विचारों का वर्णनात्मक यह वृहद्-ग्रन्थ सनातनी जगत में बड़ी ख्याति को प्राप्त हुआ। सारे देश में इस ग्रंथ का स्वागत हुआ। १९-४-७९ से २६-४-७९ तक आयोजित इसके विमोचन समारोह में तीन शंकराचार्य और शृंगेरी पीठ के प्रतिनिधि तथा देश के मूर्धन्य महात्मा समुपस्थित थे। दिल्ली दूरदर्शन ने २२-४-७९ को सम्पन्न विमोचन-समारोह की कार्यवाही का प्रदर्शन भी किया था। मेरठ में यह कई दिन का मेला सा लग गया था। चतुष्पीठ सम्मेलन, कालटी की भूमिका इसी विमोचन के अवसर पर बनी थी जो बाद में दिनांक १-५-७९ को सम्पन्न हुआ।

इसके बाद प्रकाशन ने क्रमशः 'करपात्री-एक-अध्ययन', 'परमहंसी त्रिपथगा', 'पिबत भागवतं रसमालयम्', 'श्रीमद्भगवद्गीता सप्तशती', 'भारतीय शासकीय परम्पराए', 'भगवान श्रीराम-राम-राज्य और सरिता', 'सनातन धर्म परिचय' जैसे छोटे प्रकाशन प्रकाशित किए जो विशेष जनप्रिय हुए। 'परमहंसी त्रिपथगा' तथा श्री'जगद्गुरुगौरव' का दूसरा संस्करण निकल चुका है करपात्री एक अध्ययन और पिबतभागवतंरस-मालयम् ' का प्रथम संस्करण समाप्त प्राय है वह भी प्रकाशित होने वाला है।

इसी बीच वर्ष १९८३ में प्रकाशन के अनन्य सहयोगी श्री पं० कृष्ण प्रसाद शर्मा ने श्री स्वामी करपात्री चित्रावली की तैयारी व सम्पादन कार्य पूरा कर लिया। अर्थाभाव प्रकाशन के पास पहले से ही था। इस समय भी यह चिन्ता हम लोगों का मार्ग अवरुद्ध किये हुये थी कि एक दिन मेरे अग्रज समान पूज्य श्री पं० कालीचरण पौराणिक ने कह दिया कि 'तुम चिंता मत करो, परेशान क्यों होते हो, मेरे धन का क्या सदुपयोग होगा इससे बढ़कर? अतः चित्रावली प्रकाशन का सारा व्यय मेरे से ले लना।' मैं अवाक् रह गया, यह ब्राह्मण भामाशाह श्री स्वामी जी की प्रेरणा से कैसे हमारा संरक्षक बन गया? काम प्रारम्भ हो गया और श्री ब्रजवासी एण्ड सन्स देहली के मालिक श्री लाला मुरारी लाल जी ने लागत से भी कम राशि लेकर अपनी उदारता का परिचय दिया और प्रकाशन भंवर से उबर गया और ९-९-८३ को चित्रावली का विमोचन सम्पन्न हो गया, जनता ने इस एलबम का बड़ा स्वागत किया। चित्रावली हाथों हाथ बिक गयी और अब समाप्त प्राय है। अपने प्रारम्भिक जीवन में श्रीचरणफोटो लेने ही नहीं देते थे अतः भिन्न भिन्न अवस्थाओं के चित्र प्राप्त करने में श्री शर्मा जी को जो कठिनाई हुयी है उसका अनुभव केवल मात्र मैं ही कर सकता हूँ, श्री शर्मा जी की कठिनाई का अनुभव अनिर्वचनीय है।

'अभिनवशंकर श्री स्वामी करपात्री जी'—का लेखन, संकलन,सम्पादन पूरा होने पर फिर मेरे सामने समस्या पूंजी की आयी, जब भी शर्मा जी प्रकाशन की बात करते मैं आश्वासन दे देता कि भगवान प्रबन्ध करेंगे। इसी चिंता में थे कि इसी बीच १३ अप्रैल ८६ में हमारे भांजे कलकत्ता निवासी श्रीमान पं० विष्णु शंकर तिवारी मिले और मैंने स्वामी जी की पुस्तक प्रकाशन में बाधा की बात रखी तो इस दूसरे भामाशाह ने तत्काल कह दिया कि 'कागज का जितना भी व्यय लगे मुझसे ले लेना'। हम सभी का चेहरा खिल उठा। सभी उस कार्य में लग गये और २ वर्ष में यह ग्रंथरत्न आपके कर कमलों में उपस्थित है।

श्री स्वामी जी का जीवन चरित्र सर्वप्रथम मेरठ से ही प्रकाशित हुआ था और उसका संकलन श्री शर्मा जी ने ही किया था। प्रामाणिकता का आधार स्वनामधन्य श्री पं० गंगा शंकर मिश्रजी एवं पूज्य श्री मार्कण्डेय ब्रह्मचारी जी काशी थे। पर उसमें कुछ अंश सही न बन सके थे। श्री पूज्य चरणों से मुझे अभयदान था अतः एक दिन प्रश्नावली बना कर मैं व शर्मा जी, दोनों दिल्ली में महाराज जी के दर्शनों को गये और वहाँ अवसर पाकर बन्द कमरे में वार्तालाप का अवसर मिल गया। पूज्य चरणों ने कृपा करके अपने जीवन वृत्त की कुछ घटनाओं का संशोधन-समर्थन कर दिया। उसके बाद मैं उनके जन्मस्थान गाँव भटनी भी गया तथा उनके परिवारजनों से मिलकर और जानकारी ली तथा चित्र आदि भी गांव के अनेक स्थलों के लाये। इस कार्य में श्री वासुदेव शास्त्री 'अतुल' श्री शिवराम ओझा तथा मेरे भांजे श्री उमेश चन्द वाजपेयी कानपुर ने बड़ा सहयोग दिया जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैंने इसलिए इनका उल्लेख किया है कि सामग्री की प्रामाणिकता में सन्देह न रहे, फिर भी कोई भूल हो तो विज्ञ पाठक हमें सूचना दें जिससे अगले संस्करण में उसका सुधार हो सके।

श्री पं० कृष्ण प्रसाद शर्मा को महात्माओं की चरितगाथा एवं साहित्य के लेखन-प्रकाशन का व्यसन है, अतः यह सब कृति उनकी ही आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। उनकी तपःपूत लेखनी का चमत्कार इसमें पदे-पदे देखेंगे और प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज को अभिनवशंकर के रूप में देखेंगे। भाई श्री पं० फूल चन्द पाण्डेय व्याकरणाचार्य, एम० ए०, शाहदरा ने भी इसके सम्पादन में दिशानिर्देश एवं आर्थिक सहायता दिलाकर प्रकाशन की बड़ी सहायता की है जिसके लिए कृतज्ञताज्ञापन आवश्यक है। श्री पं० कालीचरण पौराणिक, श्री शिवकुमार गोयल, पिलखुवा, श्री वीरेन्द्र कुमार जी (मुद्रक), श्री पं० वासुदेव शास्त्री 'अतुल', श्री मार्कण्डेय जी ब्रह्मचारी, श्री १०८ श्री स्वामी सदानन्द सरस्वती (श्री वेदांती स्वामी) जी महाराज, वाराणसी, श्री राधेश्याम खेमका, सम्पादक कल्याण, श्री पं० रामावतार कौशिक, शाहदरा-दिल्ली, श्री पं० प्रेमनाथ शर्मा, मेरठ, आचार्य पंडित श्यामलाल शर्मा, दिल्ली प्रभृति महानुभावों ने भी सहयोग-सहायता समय-समय पर देकर उत्साहवर्धन किया है। —वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। और भी लोगों का सहयोग मिला है सब का नाम निर्देश यहाँ किया जाना अशक्य है।

इस कार्य में विलम्ब मेरे अस्वस्थ होने और मेरठ-दंगे के कारण हुआ है। अन्त में अपनी त्रुटियों के लिए विनम्रतापूर्वक क्षमा याचना है।

✡

निवेदक :

श्यामसुन्दर बाजपेयी

अध्यक्ष

धर्मसंघ प्रकाशन

३८४, स्वामी पाड़ा, मेरठ-२

☼ विषयानुक्रमणिका ☼

"जीवन-जाह्नवी"

प्रथम खण्ड

क्रमांक	विषय लेखक	पृष्ठांक

द्वितीय खण्ड

"कृतित्व एवं वक्तृत्व"

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

कृतित्व—

तृतीय खंड

"जाकी रही भावना जैसी"

क्रमांक | विषय | लेखक | पृष्ठांक

Scanned by CamScanner

शंकरपूर्व भारत की परिस्थिति

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन, पालन एवं संचालन जिससे हो रहा है वह अखण्ड सत्ता, अनन्तशक्ति, अपरिमित स्वातन्त्र्यसम्पन्न विभु है; सदा एक रस है, सर्वत्र रमणशील है, व्याप्त है। वह सद्‌रूप है, चिद्‌रूप है, आनन्दरूप है—एक है, केवल एक है–अद्वितीय है तदतिरिक्त कुछ नहीं; जो कुछ भी दृश्यमान है वह भी वही है। जो कुछ भी हलचल व्यापारादि संसार में हो रहे हैं सब उसी अखण्डैकरस शुद्ध परात्पर ब्रह्म-सत्ता का लीलाविलास मात्र हैं। वही अद्वैत परमतत्त्व स्वमाया के सहकार से विश्वरूप में दृश्यमान है। सम्पूर्ण प्रपंच उसके द्वारा ही रचित है। उसी की माया का पसारा है, असत्य होते हुए भी सत्यवत् प्रतिभासित है। वही परमतत्व चैतन्यरूप से अणु अणु में समाया है। यद्यपि वह शुद्ध परात्पर परब्रह्म निष्कल है, निरीह है, निरंजन है, निर्विकार है, गुणातीत है—फिर भी त्रिगुणात्मिका अपनी माया से युक्त होकर वही नानारूपों में प्रगट है; उसी ने शुभाशुभ कर्मों का ताना-बाना बुनकर नानाविध जीवधारियों की सृष्टि रचना कर रखी है। कुम्भकार की भांति अनेक विध खिलौनों का निर्माण, संरक्षण एवं संहरण प्रतिपल सर्वत्र करते हुए भी अकर्त्ता है, जीव रूप से भोक्ता होकर भी अभोक्ता है; सुख-दु:ख रूप द्वन्द्वों से रहित होते हुए भी जीव-भाव से सुखी-दु:खी दीखता है। शुद्ध ज्ञानमय होकर भी अज्ञानी-जीवों को इस संसार कार्य में लिप्त रखते हुए तटस्थ-निर्विकार बना निहारता रहता है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों की, लोक-लोकान्तरों की रचना करता है; उन उन ब्रह्माण्डों में अनन्तानन्त ब्रह्माओं की उत्पत्ति कर उन्हें जीवों के कल्याण हेतु अनादि, अपौरुषेय, स्वनि:श्वासभूत वेद प्रदान करता है; वेदों के माध्यम से स्वअंशभूत सनातन जीवों को सनातन, शाश्वत ज्ञान प्रदान करता है; उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हुए 'धर्म' रूप से प्रतिष्ठित होता है। एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रगट होता है। कुछ न करते हुए भी सब कुछ कर्त्ता हुआ सा प्रतीत होता है। जीवों के कल्याण हेतु यज्ञ-यागादि वैदिक कर्मों का विधान करता है। उनके अनुष्ठान पूर्वक कर्म बन्धन से मुक्ति का मार्ग निर्धारण करता है। लोक-परलोक में अवस्थित देवता, पितर, ऋषि-महर्षियों से सम्पर्क-सूत्र स्थापित कर यज्ञमय सतोगुणी वातावरण में कालयापन करते हुए पुन: परमानन्द सुधासिन्धु-रूप परब्रह्म में समा जाने के लिए, एकमेक हो जाने के लिये उपाय निर्दिष्ट करता है; परन्तु जब वे जीव रूप में, ईश्वर-अंश से ही उत्पन्न प्राणी अज्ञान, माया, रजोगुण, तमोगुण आदि में लिप्त होने के कारण ब्रह्म एवं धर्म से विमुख हो जाते हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अधर्म, पाखण्ड, प्रमाद में फंसकर अनर्थ की सृष्टि करने में संलग्न हो जाते हैं—तो–विश्वविराट के हृदयस्थानीय इस पवित्र भारत देश में वे लीलाधारी किसी न किसी रूप से आकर धर्म-ब्रह्म का डंका बजाते हैं—यही क्रम अनादि काल से अनवरत चल रहा है।

ऋषियों-महर्षियों के इस पवित्र देश में जहाँ गंगा-यमुना के रूप में साक्षात् ब्रह्मद्रव प्रवाहित हो रहा है, द्वादशज्योतिर्लिगों के रूप में वही परब्रह्म चमत्कृत होकर प्रगट हो रहा है,

इक्यावन शक्तिपीठों में अपनी परमाद्याशक्ति के रूप में विराजित है, चारों धामों में स्वयं धर्म-ब्रह्म की सत्ता रूप में अवस्थित है—जब भी यहाँ ब्रह्म के प्रति अनास्था उत्पन्न हुयी है, धर्म के प्रति अश्रद्धा फैली है, वेदों के प्रति उपेक्षा का भाव आया है, यज्ञों के स्वरूप में विकृति आयी है, वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, सदाचारी-ब्राह्मणों पर वज्रपात हुआ है, सतोगुण को दबाकर रजोगुण एवं तमोगुण का साम्राज्य छाया है, धर्म का स्थान अधर्म, पाखण्ड, ढोंग आदि ने ग्रहण किया है—तब ही कोई न कोई ईश्वरीय विभूति वेद-धर्म की रक्षार्थ अवतरित हुयी है।

लगभग २५०० वर्ष पूर्व भी इस पुरातन-सनातन देश भारत में ऐसा ही भयावह समय उपस्थित हुआ; सनातन-वैदिक धर्म एवं यज्ञ-यागादि कर्म एकदम उपेक्षित हो गये; नास्तिकवादी बौद्ध धर्म ने वैदिक धर्मों का निषेध कर डाला। अनधिकारी तथाकथित वैदिकों को मोहित करके वेदादिधर्म शास्त्रों के प्रति अनास्था उत्पन्न कर दी। वर्णाश्रम धर्म के वैदिक आचारों को केवल धन्धा कमाने का साधन बताकर बौद्धों ने सर्वत्र ब्रह्मविद्वेष फैला दिया—सारांश ! सनातन वैदिक धर्म इस धर्मप्राण देश भारत में ही सिसक रहा था, दम तोड़ रहा था। मुट्ठी भर वैदिक मूल संरक्षण-निरत रहकर वेदों के मूल की रक्षा कर रहे थे—वे चिन्तित थे कि—'को वेदानुद्धरिष्यति' ? भगवान बुद्ध ने जो उपनिषद् मूलक धर्मोपदेश दिया था उसे भी प्रमादवश भुला दिया गया था। उसमें भी विकृति आ गयी थी। सारा-राष्ट्र अनीश्वर बाद में दीक्षित होकर 'मौज-मजा-आनन्द' उड़ाने के सिद्धान्त का पालन कर रहा था। त्याग का स्थान भोगवाद ने ले लिया था। वैदिक कर्मकाण्ड की ऐसी दुर्दशा हो रही थी कि वेदों को भाण्डों, धूर्तों, निशाचरों की रचना बताया जाने लगा था। तत्कालीन शासक भी विपरीत प्रभाव में बह गये थे। शक्तिशाली बौद्धों के समुदाय, शिष्य और संघ के साथ राजाओं के महलों में प्रवेश करके घोषित कर देते कि 'राजा उनके मत का है, देश उनका है, वैदिक मार्ग का सर्वथा त्याग कर दो'। ऐसा भयावह समय इस राष्ट्र में उपस्थित होने पर जब यज्ञादि बन्द होने से देवगण भी सन्तप्त हो गये तो सब देवता कैलाश पर्वत पर भगवान शङ्कर की शरण में गये और सम्पूर्ण स्थिति निवेदित करते हुए कहा—'प्रभु आजकल न कोई मनुष्य सन्ध्यावन्दनादि वैदिक कर्म करता है न सन्यास सेवन करता है, सभी पाखण्ड रत हैं—यज्ञ शब्द भी कान में न पड़े अतः कान बन्द कर लेते हैं लोग--परमात्मा का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को बौद्धों ने दूषित कर अनर्थ कर डाला है; अधम कापालिक ब्राह्मणों का शिर काट काटकर भैरव की पूजा करते हैं। प्रभो ! अब तो दुष्टों का विनाश कर वैदिक मार्ग की स्थापना कीजिये, देवगणों की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान शंकर ने कहा कि 'कुमार कार्तिकेय तुम वैदिक कर्मकाण्ड के उद्धार के लिए भारत में अवतार लो; ब्रह्मा जी व इन्द्र तुम्हारी सहायता के लिये उत्पन्न होंगे; हम स्वयं अवतरित होंगे तथा आप अन्य देवतागण भी मनुष्य रूप धारण कर भारतवर्ष में जन्म लो'.........इस प्रकार कुमार कार्तिकेय—कुमारिलभट्ट बने। ब्रह्मदेव—'मण्डनमिश्र' के रूप में आये। इन्द्र—राजासुधन्वा के रूप में प्रगट हुए। विष्णु भगवान सनन्दन और शेषनाग पतंजलि के रूप में इस धरती पर आ गये। वायु बने हस्तामलक तथा वरुण ने चितसुख के रूप में जन्म लिया। वृहस्पति आनन्दगिरि और सरस्वती ने उभय-भारती के रूप में जन्म लिया। अन्य अन्य देवता भी भगवान शंकर के निर्देशानुसार इस पवित्र राष्ट्र में मानव रूप में अवतरित हो गये वेद का उद्धार करने के लिये। वेद के तीन काण्ड है—'कर्मकाण्ड', उपासना-काण्ड' और 'ज्ञानकाण्ड'। मण्डनमिश्र तथा कुमारिलभट्ट ने 'कर्मकाण्ड' का पुनरुद्धार किया। पतंजलि नें 'उपासनाकाण्ड' की रक्षा की और 'ज्ञान-काण्ड' का उद्धार करने के लिये स्वयं भगवान शंकर—'आद्यश्रीशंकराचार्य' के रूप में इस धरा पर अवतीर्ण हुए।

आद्य श्री शंकराचार्य जी

संक्षिप्त शंकर-चरित—

अवतरण :

वर्तमान विक्रम संवत २०४३ से २४६४ वर्ष पूर्व उस समय प्रचलित युधिष्ठिर संवत शक २६३१ के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को केरल प्रदेश के कालटी नामक ग्राम में स्वनामधन्य विद्याधिराज के पुत्र परमतपस्वी, ज्ञान में शिव एवं वचन में गुरू वृहस्पति के समान सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग में परमनिष्णात्, यज्ञ-यागादि समस्त वैदिक क्रियाओं से सम्पन्न पण्डित 'शिवगुरू' की 'सती' नाम्नी धर्मपत्नि ने उसी प्रकार पुत्र उत्पन्न किया जिस प्रकार जगदम्बा पार्वती जी ने कुमारकार्तिकेय को जन्म दिया था। उस समय शुभ ग्रहों से युक्त शुभ लग्न थी, शुभरात्रि में देखें जाने पर सूर्य, मंगल और शनि उच्चस्थिति में अवस्थित थे तथा गुरू केन्द्र में स्थित थे।

'लग्ने शुभे शुभयुते सुषुवे कुमारं श्री पार्वतीव सुखिनी शुभ वीक्षिते च। जाया सती शिवगुरोर्निज तुङ्गसंस्थे सूर्ये कुजे रविसुते च गुरौ च केन्द्रे।' पिता 'शिवगुरू' जी ने इनका नामकरण किया 'शंकर'। ब्राह्मणदम्पत्ति ने घोर तपस्योपरान्त बालक को पाया था। स्वयं भगवान शंकर ने स्वप्न में प्रगट होकर पूछा था 'विप्र। सर्वगुण सम्पन्न सर्वज्ञ एक अल्पायु पुत्र चाहते हो अथवा विपरीत आचरण वाले अल्पगुण सम्पन्न अधिक आयु वाले अनेक पुत्र ?' शिवगुरू ने 'बहुगुण सम्पन्न प्रतापशाली सर्वज्ञ'—पुत्र की याचना की। 'तथास्तु'—कहकर शिव चले गये और उसी दिन भोजन के लिए प्रस्तुत भात में भगवान शंकर का तेज प्रविष्ट हो गया।

'तस्मिन् दिने शिव गुरोरुपभोक्ष्यमाणे भक्ते प्रविष्टमभवत्किल शैवतेज:'—इस प्रकार 'शंकर' के रूप में स्वयं भगवान शंकर अवतरित हुए।

अध्ययन :

प्रथम वर्ष में ही समस्त वर्णमाला एवं मलयालम सीखली। द्वितीय वर्ष में सब कुछ पढ़ने लिखने लगे। तृतीय वर्ष में काव्य-पुराण आदि को बिना परिश्रम एवं मनन किये सहज भाव से स्वयं समझ लिया। चतुर्थ वर्ष में ही थे शंकर अभी कि पिताश्री शिवसायुज्य को प्राप्त हो गये। माता ने युधिष्ठिर शक संवत् २६३६ में पांच वर्ष की आयु में बटुक शंकर का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करा दिया। गुरूकुल में शंकर विद्यार्जन करने लगे। स्वल्प काल में ही सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन कर लिया तथा तदुपरान्त दो-तीन मास में ही सम्पूर्ण शास्त्रों आगमों आदि को भली प्रकार सीख लिया।

बटुक शंकर भिक्षा लेने एक कुटीर पर पहुँचे। 'भिक्षांदेहिमाम्' कहने पर बृद्धा ब्राह्मणी बोली 'धन्य हैं वे जो आप जैसे महापुरुषों की सेवा करते हैं।'—'बेटा ! मैं तो अत्यन्त निर्धन हूँ कुछ भी देने में समर्थ नहीं हूँ। केवल यह एक आँवला पड़ा है मेरे पास तू यही ले ले'—यह कहते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से वृद्धा ने वह आँवला शंकर की छोटी सी हथेली पर रख दिया और अपनी विवशता पर अश्रुपात करते हुए उसने हाथ जोड़ दिये। शंकर पिघल गये तुरन्त मां लक्ष्मी की स्तुति की और उस सूखे आँवले के दान के पुण्य के फलस्वरूप लक्ष्मी ने ब्राह्मणी के घर में स्वर्ण के आँवलों की वर्षा की। इस महिमा से सर्वत्र सब आश्चर्यचकित थे।

इन दो वर्षों में शंकर ने वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण, स्मृति, महाभारत आदि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का गहन गम्भीर अध्ययन करके 'सर्वज्ञ' पद प्राप्त कर लिया।

मातृसेवा–अध्यापन–ऋषि दर्शन :

छह वर्षीय बालक शंकर सातवें वर्ष में ही विद्याध्ययन सम्पन्न करके घर लौट आये। घर पर ही मात-सुश्रूषा, वेदाध्ययन, अग्नि व सूर्य की आराधना में निरत रहते हुए अनेकों को विद्यादान करने लगे। एक दिन माता स्नान हेतु नदी पर न जा सकी, गर्मी के कारण मार्ग में ही मूर्छित होकर गिर पड़ीं। जब शंकर ने देखा तो माता को घर उठा लाये और नदी की स्तुति की कि माता के स्नान के लिये नदी की धारा घर के पास ही आ जाये'–अगले दिन ब्राह्ममुहुर्त्त में ही नदी कुटिया के निकट बह रही थी। माता प्रसन्न थीं।

केरल नरेश ने शंकर की ख्याति सुनकर अनेक भेंट लेकर मन्त्री को भेजा परन्तु शंकर ने विनम्रतापूर्वक वापिस लौटा दिया। स्वयं राजा ने उपस्थित होकर दशसहस्त्र सुवर्णमुद्राएँ भेंट कीं और स्वरचित तीन संस्कृत नाटक शंकर को सुनाए। शंकर ने सन्तुष्ट होकर कहा 'वरंब्रूहि।' राजा ने पुत्र की कामना की। शंकर ने मुद्राओं को अस्वीकार करते हुए पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।

घर पर शंकर अध्ययन के साथ-साथ अध्यापन भी कर रहे थे। हितैषियों ने शंकर के लिये कन्या ढूंढनी प्रारम्भ कर दी। इसी समय शंकरावतार के दर्शन करने अन्य लोक-लोकान्तरों से विशेष विभूतियाँ शंकर के घर पधारीं। उनमें उपमन्यु, दधीचि, गौतम, त्रितल, अगस्त्य आदि ऋषिगण प्रमुख थे। माता 'सती' ने ऋषि-मुनियों की पूजा की और बालक की आयु कितनी है? ऐसी जिज्ञासा व्यक्त की। महर्षि अगस्त्य ने बताया कि इनकी आयु आठ वर्ष की ही है: आठ वर्ष और होगी। परन्तु किसी अन्य कारण से इन्हें सोलहवर्ष की आयु और प्राप्त होगी। कुल बत्तीस वर्ष की इनकी आयु होगी। इतना सुनकर माता खिन्न हो गयी। तब शंकर ने ज्ञानोपदेश देकर माता को सान्त्वना दी और स्वयं सन्यास लेकर मुक्ति-प्राप्त करने की आज्ञा चाही। माँ ने रो रोकर शंकर से कहा 'बेटा! तेरे बिना मैं अकेली वृद्धा क्या करूँगी?'—शंकर चुप थे।

सन्यास एवं गृहत्याग :

शंकर के मन में वैराग्य हिलोरें ले रहा था माता उन्हें छोड़ती नहीं थी। एक दिन जब शंकर माता के साथ नदी पर स्नान कर रहे थे तब उनका पैर मगर ने पकड़ लिया। शंकर ने कहा 'माता यदि तुम मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दे दो तो यह मगरमच्छ मुझे छोड़ देगा'। माँ ने सोचा अरे जीवित तो रहेगा सन्यासी रूप में ही सही बस तुरन्त आज्ञा दे दी। सातवर्षीय बटुक शंकर ने तुरन्त मानसिक सन्यास ले लिया और तत्क्षण मकर ने छोड़ दिया। माता को यह आश्वासन देकर कि 'जब भी आप मेरा ध्यान करोगी, स्मरण करोगी उसी समय मैं उपस्थित हो जाऊंगा और मृत्यु के पश्चात् सन्यासी होते हुए भी स्वयं तुम्हारा दाहसंस्कार करूँगा।'—शंकर ने माता को प्रणाम किया और युधिष्ठिर संवत २६३८ में घर त्याग कर चल दिये गुरु की खोज में।

गुरुसेवा :

कालटी (केरल) से चलकर शंकर नर्मदा तट पर आचार्य गोविन्द गुहा पर पहुँचे और गुहाद्वार से ही प्रार्थना की कि–'आप महर्षि वेदव्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी के शिष्य आचार्य श्री गौड़पाद से वेदान्त तत्त्व की शिक्षाग्रहण करके अनन्तगुणों से विभूषित हैं; मैं (शंकर) भक्ति पूर्वक आपके पास वेदान्त पढ़ने के लिए उपस्थित हुआ हूँ—सुनते ही गोविन्दाचार्य जी ने पूछा 'तुम कौन

हो' ? शंकर ने निज स्वरूप का परिचय दिया। सुनते ही आचार्य गोविन्दपाद ने कहा—'मैंने समाधि-दृष्टि से जान लिया है कि तुम साक्षात् शंकर हो'। शंकर ने गुरूचरणों में प्रणाम किया और सुश्रूषासे उन्हें प्रसन्न किया।

गुरुउपदेश एवं काशीगमन :

आचार्य गोविन्दपाद ने शंकर से प्रसन्न होकर उपनिषद के चारों 'महावाक्यों' के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का उपदेश दिया। शंकर ने भगवान् वेदव्यास के सूत्रों में प्रतिपादित ब्रह्म को जानकर समाधि में ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करके एकात्म प्राप्त कर लिया। शंकर गुरू सेवा में निरत थे, आचार्य समाधिस्थ थे कि एक दिन अचानक भीषण वर्षा से आई बाढ़ का जल गुहा में प्रविष्ट होने ही वाला था कि शंकर ने तुरन्त एक घड़े को अभिमन्त्रित करके गुहाद्वार पर ही रख दिया और समस्त बाढ़ का जल उस घड़े में समा गया। इस प्रकार शंकर ने योगबल से बाढ़ से गुरू की रक्षा की। इससे गुरू जी परम प्रसन्न हुए। उन्हें स्मरण आया कि अतीत में हिमालय में अनुष्ठित महायज्ञ में उपनिषदों की व्याख्या करते समय महर्षि वेदव्यास से पूछा था कि 'आप द्वारा वेद का विभाग(व्यास) किया गया है, महाभारत तथा पुराण की रचना की गयी है। योगशास्त्र पर भाष्य लिखागया है, ब्रह्म-सूत्र की रचना की गयी है। उस ब्रह्मसूत्र के बारे में सन्देह करने वाले शंकालुओं तथा अर्थका अनर्थ करने वालोंको सही सही व्याख्या करके उन्हें परास्त करने के लिए आज एक ऐसे भाष्य की बड़ी अपेक्षा है। सुनते ही व्यास जी ने कहा था कि—'मेरे ही समान तुम्हारा (गोविन्दपाद का) एक शिष्य होगा जो घड़े में ही विशाल जलराशि को भर देगा वही विपरीत मतों का खण्डन करेगा और कल्याण कारक भाष्य की रचना करेगा।' आचार्य श्री गोविन्द-पाद ने शंकर को निर्देशित किया कि तुम काशी नगरी जाकर अभिनन्दनीय ग्रन्थों की रचना करो, वहाँ देवाधिदेव महादेव विश्वनाथ भगवान शंकर तुमपर अनुग्रह करेंगे।'—शंकर तुरन्त गुरू आज्ञानुसार काशी चले गये।

चाण्डाल संवाद :

मध्याह्नकालीन सूर्य की प्रखर किरणों से काशी की विथिकाएं सन्तप्त हो रही थीं। शंकर गंगातट की ओर बढ़े जा रहे थे कि गली में मार्ग अवरुद्ध किये भयानक कुत्तों के साथ चाण्डाल खड़ा था। शंकर ने कहा—'दूर हटो'। चाण्डाल बोला–'दूर हटो से तुम्हारा अभिप्राय शरीर से है या शरीरी से! —'यह शरीर अन्नमय है क्या एक शरीर से दूसरा शरीर अन्नमय से भिन्न है ?—शरीर गत जीव हमारी क्रियाओं का दृष्टा रूप से साक्षी बना है, तब क्या एक साक्षी दूसरे साक्षी से पृथक है ? जिस प्रकार गंगाजल और मदिरा में पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब भले ही अलग अलग दीखता हो परन्तु दोनों में प्रतिबिम्बित सूर्य तो एक ही है। मैं पवित्र ब्राह्मण हूँ तुम श्वपच हो अतः दूर हटो यह आपका आग्रह मिथ्या है—आप अज्ञान द्वारा निजस्वरूप को भुलाकर इस नश्वर शरीर में अहं भाव क्यों कर रहे हो ? मोक्ष विद्या प्राप्त करके भी ऐसी भावना क्यों जागृत हो रही है–आश्चर्य है कि आप जैसे महापुरूष भी उस मायावी के इन्द्रजाल में फंस रहे है। तत्त्व दृष्टि से ब्राह्मण और चाण्डाल के शरीरों में कोई भेद है ? 'एकमेवाद्वितीयम्'–इस ब्रह्मतत्त्व में तुम प्रतिष्ठित हो फिर भी मिथ्या अभिमान करते हो............'यह कह कर वह चाण्डाल चुप हो गया। शंकर बोले—'आपने नितान्त सत्य कहा है, तुम आत्मज्ञानी हो, तुम्हारे वचन से अन्त्यज होने का संदेह मैं हटा रहा हूँ। जिसकी दृष्टि में यह सम्पूर्ण विश्व नित्य आत्मरूप से प्रकाशित होता है, जो चैतन्य विष्णु शिव आदि

देवों में स्फुरित होता है वही चैतन्य शुद्ध अन्यान्य जीवों में भी स्फुरित है–वह चैतन्य मैं हूं यह दृश्य जगत नहीं—'ऐसी जिसकी दृढ़ बुद्धि है वह मेरा गुरु है: इस संसार में विषय के अनुभव के समय जहां जहां ज्ञान उत्पन्न होता है वहां वहां सर्वउपाधि रहित ज्ञानस्वरूप मैं ही हूं, मुझसे भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं ऐसी जिसकी निश्चयात्मिका दृढ़ बुद्धि है वह भले ही चाण्डाल हो मेरा गुरु है–ब्रह्म ज्ञानी शंकर के इतना कहते ही न वहाँ चाण्डाल था न कुत्ते अपितु चारों वेदों के साथ भगवान शंकर स्वयं खड़े मुसकरा रहे थे काशी के मणिकर्णिका घाट की उस गली में; उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित था। शंकर ने सहसा सम्भ्रम में पड़कर स्तुति की—

"दासस्तेऽहं देहदृष्ट्याऽस्मिशम्भो, जातस्तेंऽशो जीव दृष्ट्या त्रिदृष्टे।
सर्वस्याऽत्मन्नात्म दृष्ट्या त्वमेवेत्येवं में धीर्निश्चिता सर्व शास्त्रैः॥"

शंकर ने अनेक विध भगवान शिव की स्तुति की। उनके उदार वचन सुनकर विश्वनाथ बोले–'तुमने हमारा स्वरूप प्राप्त कर लिया है। वेदव्यास ने एकत्र वैदिक मन्त्रों का विभाग करके 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की है जिसमें कणाद, सांख्य, बौद्ध, जैन आदिक वेद विरुद्ध मतों का समूल खण्डन किया गया है। मूर्ख व्यक्तियों ने वेद के एक दो या तीन वचनों के प्रमाण से अपने कुत्सित भाष्यों की रचना की है, जिसे बहुत से विद्वानों ने दूषित भी कर दिया है। शंकर ! आप वेद के रहस्य को जानते हो, अतः इन दुष्ट मतों का खण्डन करके उस भाष्य की रचना करो जो श्रुति के द्वारा पुष्ट की गयी युक्तियों से युक्त हो। इस भाष्य का विशेष गौरव होगा। भास्कर, अभिनव-गुप्त, प्रभाकर, मण्डन जैसे विख्यात पण्डितों को जीतकर भारत में ब्रह्मतत्त्व की स्थापना करो। अपने शिष्यों को भिन्न भिन्न स्थानों में वेदान्तमार्ग के परिपालन के लिये रखकर पीछे कृतार्थ होकर मेरे पास चले आना'—इस प्रकार भूत भावन सदाशिव विश्वनाथ भगवान शंकर–यति शंकर को आदेश-निर्देश एवं आशीर्वाद देकर वेदों सहित अन्तर्धान हो गये—यति शंकर हाथ जोड़े खड़े थे।

भाष्य रचना :

भगवान विश्वनाथ से आशीर्वाद पाकर यतिशंकर बदरिकाश्रम पहुँचे। वहाँ समाधि में ऋतम्भराप्रज्ञा द्वारा शास्त्रार्थ का आलोचन किया। अन्य ब्रह्मर्षियों से वेदान्त विचार किया और फिर गम्भीर, मधुर भाष्य की रचना की। 'भव्यं गम्भीर मधुरं भणतिस्म भाष्यम्'। इसी समय शंकर ने उपनिषदों पर भाष्य रचे। महाभारत एवं श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्याएँ लिखी। सनत्सुजातीय और नृसिंह तापनीयोपनिषद पर भाष्य लिखे। उपदेश-साहस्त्री दशश्लोकी आदि अनेकों स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की। विपक्षियों को शंकर का उद्भव सहन नहीं हुआ उन्होंने अपने अपने मतों को बड़े प्रबल तर्कों से शंकर के समक्ष रखा परन्तु शंकर ने बड़ी कुशलता से सबका खण्डन कर डाला। पाशुपतमताबलम्बी पराभूत हो गये। शून्यवादी बौद्ध लोग आत्मा की ही हत्या करने उसके पीछे भागते थे। कणाद से आत्मा ने अपनी सत्ता प्राप्त की। कुमारिल ने आत्मा को गन्तव्य पर पहुँचने का मार्ग भर दिखलाया और बस। सांख्य ने केवल दुःख निवारण भर किया। योगियों ने प्राणायाम द्वारा उसकी पूज्यता स्थापित की। चार्वाक ने आत्मा का ही तिरस्कार किया। वैशेषिक ने आत्मा को कर्त्ता मानकर उसे सुख-दुःख-ज्ञान आदि का कर्त्ता ही बना डाला। कुमारिलमतावलम्बियों ने पंच भूतों से अलग यज्ञादिविधि के अनुष्ठान में उसे अनुरक्त बना डाला। सांख्य ने उसके मत को हटाकर प्रकृति के पराधीन कर दिया इस प्रकार सबने अपनी अपनी अलग धारणा बना कर भारतीय वैदिक

विचार दर्शन को बिखराव की स्थिति में पहुँचा दिया। इसके अतिरिक्त वाममार्गी आदि मत इस पवित्र राष्ट्र में पनप रहे थे जो सर्वथा वेद विरुद्ध थे। ऐसे भीषण काल में शंकर ने आकर उस सर्वव्यापी आत्मा को परमात्मा बना दिया; उसे सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान, सर्वाधिष्ठान बनाकर पुनः इस पुरातन-सनातन देश में प्रतिष्ठित कर दिया। उनको इस वैचारिक क्रान्ति में सहयोग प्रदान करने के लिये जो महान-दिव्यात्माएँ पधारी थीं उनके नाम का संकेत पूर्व पृष्ठ में किया जा चुका है।

हिमालय प्रवास एवं इस यात्राकाल में भी शंकर ने अनेक महत्वपूर्ण आश्चर्यजनक एवं ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न कर वैदिक धर्म की रक्षा की। ऋषिकेश में गंगा में से विष्णुमूर्ति निकालकर प्रतिष्ठा की। नरबलि की कुप्रथा का निवारण किया। नारदकुण्ड से भगवान बद्रीनाथ की मूर्ति निकालकर पुनः स्थापना की। बद्रीनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया। ब्रह्मज्योति के दर्शन किये और ज्योतिर्मठ की स्थापना युधिष्ठिर संवत २६४२-४३ में की। केदारनाथ में शीतनिवारण हेतु तप्तकुण्ड अनुसन्धान पूर्वक शिष्यों को शीत मुक्ति दिलायी। इस समय भाष्यकार शंकर की आयु बारह वर्ष थी।

शंकर-व्यास शास्त्रार्थ :

शंकर अपनी शिष्य मण्डली सहित वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए अवैदिक पाखण्डी मत-मतान्तरों का मौलिक खण्डन करते हुए पुनः काशी पधारे। एक दिन वे अपने शिष्यों को शारीरिक भाष्य पढ़ा रहे थे कि एक ब्राह्मण ने आकर आचार्य से प्रश्न किया—'तुम कौन हो, क्या पढ़ा रहे हो!'—आचार्य के स्थान पर एक विद्यार्थी ने ही उत्तर दिया कि 'सम्पूर्ण उपनिषदों में स्वतन्त्र ये हमारे गुरू हैं, इन्होंने द्वैतवाद को दूर करने वाला ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखा है।'–ब्राह्मण बोले—'यदि महर्षि वेदव्यास प्रणीत सूत्रों का तुम अर्थ जानते हो तो एक सूत्र की व्याख्या करो।' 'मैं सूत्रों के अर्थ जानने का कभी अहंकार नहीं करता, सूत्रार्थ वेत्ता गुरूजनों को मैं नमस्कार करता हूँ। जो आप पूछेंगे उसका उत्तर दूंगा?' शंकराचार्य ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया।

ब्राह्मण ने सूत्र बोला—'तदन्तर प्रतिपत्तौरंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्' (३.१.) और कहा कि इसका अर्थ कहो। शंकर ने तत्क्षण उत्तर दिया कि—'इन्द्रियों के अवसन्न होने पर अर्थात् मरण के समय अन्य शरीर प्राप्ति के लिये जीव पँचभूतों के सूक्ष्म अवयवों से संयुक्त होकर दूसरे स्थान में जाता है। इस विषय का निरूपण 'ताण्डिश्रुति' में गौतम तथा जाबालि के प्रश्नोत्तर में किया गया है।'

ब्राह्मण ने इस उत्तर को सुनकर उस पर अनेकार्थक विकल्प उपस्थित कर दिये और शंकर द्वारा प्रस्तुत अर्थ का खण्डन कर दिया। आचार्य शंकर ने भी उन ब्राह्मण द्वारा उपस्थापित सैंकड़ों बचनों का सैंकड़ों प्रकार के प्रबल एवं पुष्ट तर्कों द्वारा पुनः खण्डन कर दिया तथा अपने पूर्वोक्त उत्तर का समारोहपूर्वक मण्डन कर दिया। यह विवाद निरन्तर आठ दिन तक चला। सब शिष्यमण्डली आश्चर्यचकित थी कि यह विद्वान् ब्राह्मण कौन हैं—तब पद्मपाद ने योग दृष्टि से देखा तो पाया कि वह महापुरुष और कोई नहीं स्वयं महर्षि वेदव्यास जी ही हैं। अपने गुरू से बोले—'हे आचार्य शंकर! आप साक्षात् शंकर हो तथा व्यास स्वयं नारायण हैं—इन दोनों में विवाद होने पर मैं आपका दास क्या करूँ?'।

"त्वं शंकरः शंकर एव साक्षाद् व्यासस्तु नारायण एव नूनम्।
तयोर्विवादे सततं प्रसक्ते किं किंकरोऽहं करवाणि सद्यः ॥"

शिष्य के उक्त रहस्यमय बचन सुनकर आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र के रचयिता भगवान वेदव्यास के दर्शन लालसा से करबद्ध होकर प्रणाम किया तथा स्तुति की। सूत्रकार वेदव्यास जी ने सूत्रों पर भाष्य रचना करने वाले भाष्यकार आचार्य शंकर से कहा कि—'तुम्हारे अखण्ड पाण्डित्य को हमने जान लिया है। तुम शुकदेव की तरह मुझे प्रिय हो'—शंकर ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि— 'पूज्य ऋषिगण जिनके शिष्य हैं वहाँ तिनके से भी लघुतर मैं किस गिनती में हूँ; आपके सूत्ररूपी सूर्य की अपने भाष्यरूपी दीपक से आरती उतार कर मैं धृष्टता से लज्जित नहीं हो रहा हूँ।'—अब व्यास जी ने भाष्य को भली प्रकार पढ़कर कहा—'तुम मीमांसकों में भी मुख्य हो, सम्पूर्ण व्याकरण के ज्ञाता हो, तुम्हारे मुख से अशुद्ध शब्द कैसे निकल सकते हैं?—मेरे भाव के अनुसार भाष्य रचना में अन्य कोई समर्थ नहीं है। तुम साक्षात् शंकर के अवतार हो। वेदान्त विद्या पर ग्रन्थ लिखो और भेदवादी विद्वानों को जीतकर वेदान्त मत का प्रचार करो—मैं इच्छानुसार जा रहा हूँ।' शंकर बोले—'मैंने भाष्यों की रचना की, शिष्यों को पढ़ाया, दुष्टमतों का खण्डन कर दिया। अब क्या कर्तव्य है? आप कुछ क्षण यहाँ मणिकर्णिका घाट पर ठहरें। मेरी आयु समाप्ति पर है अतएव मैं इस शरीर को आपके सम्मुख ही त्याग दूँ।"—'नहीं वत्स! ऐसा न करो। अभी अनेकों विद्वानों को जीतना शेष है। मैं तुम्हें, और सोलह वर्ष की आयु प्रदान करता हूँ। अभी विपक्षियों को जीतने के लिये और सोलह वर्ष पृथ्वी पर रहो'—यह कहकर महर्षि वेदव्यास जी अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार युधिष्ठिर संवत २६४७ में गुरू आज्ञा से शंकराचार्य ने दिग्विजय करने का संकल्प लिया।

भट्टपाद कुमारिल से भेंट—

षोडश वर्षीय किशोर सन्यासी अब शिष्य मण्डली सहित काशी से प्रयाग पहुँचे वहां मीमांसकाचार्य कुमारिल भट्ट अपने बौद्ध गुरू के सिद्धान्तों के खण्डन जनित दोष का प्रायश्चित करने के लिये तुषानल में बैठकर शरीर त्यागने की दीक्षा लिये त्रिवेणीतट पर विराज रहे थे। आचार्य तुरन्त कुमारिल भट्ट के पास पहुँचे। भट्ट जी चारों ओर से अनेक शिष्यों से घिरे हुए थे जो उनकी स्तुति कर रहे थे और कुमारिल जिनका आधा शरीर जल चुका था शान्त भाव से तुषाग्नि के मध्य विराज रहे थे। उन्होंने आचार्य शंकर का सांगोपांग पूजन कराया। आचार्य ने स्वरचित भाष्य कुमारिल को दिखलाया। भाष्यावलोकन कर वे बोले—'यदि मैं प्रायश्चित स्वरूप शरीर त्याग रूपी व्रत की दीक्षा न लिये होता तो आपके इस अद्भुत भाष्य पर ग्रन्थ लिखता। केवल अध्यास पर ही आठ हजार वार्त्तिक बन सकते थे। आपके दर्शन की चिरआकांक्षा थी अन्तिम समय में दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। सारा संसार अवैदिक बौद्धों से आक्रान्त हो गया था, वेदमार्ग की रक्षार्थ बौद्ध विद्यार्थी बन कर मैंने बौद्ध गुरू से उनके सिद्धान्तों का अध्ययन किया फिर उन्हीं गुरू को शास्त्रार्थ में पराजित किया। इस प्रकार विद्यागुरू का तिरस्कार एवं जैमिनी मुनि जी द्वारा प्रदर्शित शास्त्र में अभिनिवेश रखकर परमात्मा का निराकरण किया—इन दोनों महान दोषों का निवारण करने हेतु मैंने विधिवत् दीक्षा लेकर इस तुषानल में शनैः शनैः जलकर इस देह को भस्म करने का व्रत लिया है—।' आचार्य शंकर ने तुरन्त कहा—'अरे! आपके चरित्र में दोष एवं पातक को स्थान ही नहीं है, यह व्रत तो सज्जनों की शिक्षा के लिये कर रहे हैं; मैं अभी अपने हाथ से जल छिड़ककर आपको पूर्ववत् स्वस्थ किये देता हूँ आप मेरे भाष्य पर वार्तिक अवश्य लिखें—'—'नहीं! मैं व्रत

त्याग रूप, लोक विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। आपमें तो मुझे पुनः जीवित-स्वस्थ करने की शक्ति-सामर्थ्य है-यह भी मैं जानता हूं परन्तु मैं इसे त्याग नहीं सकता—आप मुझे तारक मन्त्र का उपदेश करें। मेरे पट्टशिष्य मण्डनमिश्र को जीतें वह सर्वशास्त्र निष्णात है, मुझसे भी योग्य है वही भाष्य पर वार्तिक लिखेगा—'चावल की भूसी में शरीर को जलाते हुए अविचलित बैठे हुए उन धर्मनिष्ठ वेदज्ञ ब्राह्मण भट्टपाद कुमारिल ने सहज भाव से निवेदन किया।

आचार्य शङ्कर ने सुख-स्वरूप ब्रह्म का उपदेश उन महा पण्डित कुमारिल भट्ट को दिया और इस प्रकार इस आदर्श ब्राह्मण ने अपना व्रत पूरा किया।

मण्डनमिश्र से शास्त्रार्थ :—

प्रयाग से माहिष्मती नगरी के लिये आचार्य श्री ने तुरन्त आकाशमार्ग से गमन किया और निज योग बल से वे मण्डनमिश्र के घर पहुँच गये। उनके विशाल भव्य भवन के पट बन्द थे। परन्तु योगबल से आचार्य मिश्र जी के आँगन में जा पहुँचे। उनके यहां श्राद्ध था अपने तपोबल से उन्होंने महर्षि वेदव्यास और आचार्य जैमिनि को बुला रखा था। मिश्रजी उनके चरण धो रहे थे। शिखा–सूत्र–विहीन गैरिक वस्त्रधारी सन्यासी शङ्कर को देखते ही मिश्रजी क्रोधित हो गये क्योंकि श्राद्ध में सन्यासी वर्जित है, तुरन्त बोल उठे—'कुतोमुण्डी'—मुण्डी कहाँ से ?

'आगलान्मुण्डी'—मैं गले तक मुण्डी हूँ—शङ्कर का उत्तर था।

'पन्थास्ते पृच्छ्यतेमया'—मैं आपके रास्ते को पूछता हूँ कि आप कहाँ से आये हैं ? —मिश्रजी बोले।

'किमाहपन्थाः'—मार्ग से पूछने पर उसने क्या उत्तर दिया ?' —शंकर बोले।

'त्वन्मातामुण्डेत्याह यथैवहि'—'मार्ग ने मुझे उत्तर दिया कि तुम्हारी माता मुण्डा है—' मिश्रजी ने क्रोधित होकर कहा।

'पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन। त्वन्मातेत्यत्रं शब्दोऽयं न मा ब्रूयाद–पृच्छकम्'—तुरन्त शङ्कर ने उत्तर दिया कि 'तुमने ही मार्ग से पूछा अतः उसका उत्तर तुम्हारे लिये है। मैंने तो मार्ग से कुछ पूछा नहीं है अतः उसका उत्तर मेरे विषय में नहीं है।

अहो पीताकिमु सुरा'—'क्या सुरा पी ली है—मण्डन मिश्र ने कहा।

'नैव श्वेता यतः स्मर'—'सुरा श्वेत होती है पीली नहीं'—शङ्कर ने पीता का अर्थ पीना के स्थान पर पीला लगाकर उत्तर दिया।

'किं त्वं जानाहि तद्वर्णं—'वाह तुम तो उसके रंग को जानते हो ? मिश्रजी बोले।

'अहं वर्णं भवान् रसम्'—मैं तो रंग जानता हूँ पर आप उसका रस—शङ्कर का उत्तर था।

'मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषसे'—विषैले बाण से मारे गये मृगमांस भक्षण से तुम पागल तो नहीं हो गये हो जो उल्टी सीधी बोल रहे हो—मिश्रजी ने क्रुद्ध होकर कहा।

'सत्यं ब्रवीति पित्तृवत्त्वत्तो जातः कलञ्जभुक्'—आप ठीक कह रहे हैं, पिता के समान ही आपसे उत्पन्न पुत्र कलंजभक्षी है—शङ्कर ने मतोजातः का अर्थ मुझसे उत्पन्न (पुत्र) लगाकर व्याकरण का पाण्डित्य प्रदर्शित करते हुए उत्तर दिया।

इसी प्रकार मिश्रजी और शङ्कर में अनेक प्रश्नोत्तर हुए। शङ्कर संस्कृत शब्दों का अन्यथा अर्थ करके सहज ही अपने पाडित्य का प्रदर्शन कर रहे थे उधर मण्डन मिश्र प्रत्येक प्रश्न पर अत्यन्त

उत्तेजित होकर क्रोधावेश में आकर कटुतम वाक्यों का प्रयोग करने लगे । अन्त में मण्डन मिश्र ने कहा कि—'कर्मकाले न सम्भाष्य अहं मूर्खेण संप्रति'—'मैं श्राद्ध कर्म के समय मूर्ख से भाषण करना नहीं चाहता ।' आचार्य शङ्कर ने तुरन्त व्याकरण की दृष्टि से उक्त वाक्य में त्रुटि पकड़कर कहा—'अहो प्रकटितं ज्ञानं यति भंगेन भाषिणा'—आश्चर्य है । सम्भाष्य+अहम् में सन्धि के अनुसार 'सम्भाष्योऽहम्' होना चाहिये, आपने मनमानी सन्धि करके विसर्ग का लोप करके यतिभंग किया है, मूर्खता मेरी है कि आपकी ?'–हतप्रभ होते हुए मण्डन बोले–'अरे! मैं यति (सन्यासी) के भंग करने में लगा हूँ, मेरे लिये व्याकरण दृष्ट्या यतिभंग से कोई दोष नहीं होगा।'

यति भंगे शब्द में पंचमी समास है, जिसका अर्थ होता है यति (सन्यासी) से भंग (पराजय) शङ्कर ने व्याकरण से यह अर्थ बताते हुए कहा कि 'आप मुझे क्या पराजित करेंगे आपका ही पराजय होगा मेरे द्वारा ।' –उक्त संवाद को जैमिनि मुस्कराते हुए देख-सुन रहे थे । व्यासजी बोले–'बेटा! यह सन्यासी आत्मतत्त्व के जानने वाले हैं; इन्होंने अपने ज्ञान से लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा तीनों का निराकरण कर दिया है । इनके प्रति तुम्हारा यह आचरण क्या अनुरूप कहा जा सकता है ? आज के अतिथि तो स्वयं विष्णु भगवान हैं—इन्हें आप शीघ्र निमन्त्रण दें ।' मिश्रजी ने शान्त होकर भिक्षा के लिये निमन्त्रण दिया तो आचार्य शङ्कर ने कहा कि—'मुझे साधारण अन्न की भिक्षा में कोई आदर नहीं है । मैं विवाद (शास्त्रार्थ) की भिक्षा मांगने आपके पास आया हूँ । इसमें शर्त यह रहेगी कि जो भी पराजित होगा उसे दूसरे का शिष्य बनना पड़ेगा ।' मण्डन मिश्र ने सहर्ष शास्त्रार्थ की भिक्षा स्वीकार करते हुए कहा कि—'आज मेरा जीवन धन्य है, कल से शास्त्रार्थ प्रारंभ होगा । मैं साधारण व्यक्ति नहीं हूँ यमराज के भी विनाशक ईश्वर का खण्डन करने वाला हूँ, वेदान्ती लोग ईश्वर को कर्मफलदाता मानते हैं, किन्तु मैंने सिद्ध कर दिया है कि फल का दाता स्वयं कर्म ही है, ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है । मध्यस्थ और प्रतिज्ञाएं क्या होंगी ? कौन प्रमाण आपको स्वीकार्य है और इस विषय में आपका क्या अभिप्राय है—यह निश्चय करें ।' आचार्य शङ्कर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया कि कल से शास्त्रार्थ हो । व्यास जैमिनि से मध्यस्थता करने का आग्रह करने पर उन्होंने मिण्डन मश्र की पत्नि सरस्वती की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ करने का परामर्श दिया जिसे दोनोंने स्वीकार कर लिया । अगले दिन मण्डन मिश्र की धर्मपत्नि शारदा–उभय भारती की मध्यस्थता में विशालसभा लगी । दूर-दूर के विद्वानों की मण्डली जम गयी । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी अदृश्य होकर सूक्ष्मचिन्मय शरीरों से शास्त्रार्थ सुनने के लिये आ उपस्थित हुए । शङ्कराचार्य ने प्रथम प्रतिज्ञा की—

'ब्रह्म एक, सत चित निर्मल तथा परमार्थ है, जिस प्रकार शुक्ति रजत का रूप धारण कर भासित होती है, उसी प्रकार यह ब्रह्म स्वयं प्रपंच रूप भासित होता है । उस ब्रह्म के ज्ञान से इस प्रपंच का नाश हो जाता है और वाह्य पदार्थों से हटकर जीव अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है—यही हमारा सिद्धान्त है और इसमें स्वयं उपनिषद प्रमाण हैं यदि मैं पराजित हो जाऊंगा तो सन्यासी के कषाय वस्त्र त्याग कर गृहस्थ के श्वेत वस्त्र पहन लूंगा ।' फिर मण्डन मिश्र ने प्रतिज्ञा की :—

'चैतन्य रूप ब्रह्म के प्रतिपादन करने में वेदान्त प्रमाण नहीं है, क्योंकि सिद्धवस्तु के प्रतिपादन में उपनिषद का तात्पर्य नहीं है । वेद का कर्मकाण्ड भाग वाक्य के द्वारा प्रकटित किये जाने वाले सम्पूर्ण को प्रकट करता है—अतएव वही प्रमाण है । शब्दों की शक्ति कार्य मात्र को प्रकट करने

में है। कर्मों से ही मुक्ति प्राप्त होती है। कर्म का अनुष्ठान प्रत्येक मनुष्य को जीवन भर करना चाहिये।' —'यदि मैं पराजित हो जाऊंगा तो गृहस्थ धर्म का त्याग कर सन्यास धारण कर लूंगा।'

दोनों विद्वानों में बड़े विद्वतापूर्ण ढंग से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया, छह दिन के उपरान्त मण्डन मिश्र का पक्ष दुर्बल पड़ गया, उनका सिद्धान्त खण्डित हो गया फिर उन्होंने कई दिन तक आक्षेप करने आरम्भ किये। परन्तु अन्त में मण्डन मौन हो गये। उभय भारती ने पति को पराजित घोषित कर दिया।

उभय भारती ने पत्नि को पराजित घोषित करने के बाद स्वयं अर्द्धांगिनी होने के कारण शास्त्रार्थ की इच्छा व्यक्त की। आचार्य शंकर इसके लिए तैयार हो गए मण्डन मिश्र की धर्मपत्नि उभय भारती से सत्रह दिन तक शास्त्रार्थ चला, वे पराजित हो रही थीं कि उन्होंने कामकला विषयक प्रश्न कर डाले। शङ्कर ने सन्यास धर्म की मर्यादा रक्षण हेतु एक मास का समय मांग लिया। तदनन्तर आकाशगमन द्वारा उन्होंने देखा कि एक स्थान पर मृतक शरीर पड़ा है वह राजा अमरूक का शव था। शङ्कर ने योगबल से राजा अमरूक के शरीर में सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके–वात्स्यायन–कामसूत्र का अध्ययन किया और पुनः आकाश मार्ग से ही मण्डनमिश्र के घर पहुँचे। उभय भारती ने प्रणाम किया और कहा कि—'भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं सभा में मुझे न जीतकर कामशास्त्र में कथित कामकलाओं को जानने के लिये आपने जो प्रयत्न किया वह मानव चरित्र का अनुकरण मात्र है; अन्यथा संसार की कोई विद्या नहीं जो आपसे अपरिचित हो। आपसे हम दोनों पति–पत्नि पराजित हैं, जैसे सूर्य द्वारा किया गया पराभव चन्द्रमा की अपकीर्ति नहीं फैलाता, उसी प्रकार आपसे पराजित होने पर भी किसी प्रकार हम लज्जित नहीं हैं अब मैं ब्रह्म लोक में जाना चाहती हूं।'

शङ्कर बोले—'देवी! तुम ब्रह्मा की भार्या हो, वाणी की आद्या देवता, चिन्मयी हो। ऋष्यश्रृंगादि क्षेत्रों में मेरे द्वारा बनाये गये मन्दिरों में शारदा नाम से पूजा प्राप्त करो, और अभिलषित वस्तुओं को देती हुई सज्जनों के पास निवास करो।'—शङ्कर की प्रार्थना पर शारदा ने स्वीकृति दे दी। मण्डनमिश्रजी भी यज्ञानुष्ठान करके समस्त धन आदि का दान करके, शिखा–सूत्र त्यागकर सन्यासी बन गये। शङ्कर ने मण्डन को वेदान्त, तत्वोपदेश दिया, उन्हें तत्व साक्षात्कार हुआ और मण्डन बोले—'भगवन्! आज मैं धन्य हो गया। आपके करूणाकटाक्ष ने मेरे अन्धकार को दूर कर दिया।' अब मण्डनमिश्र 'सुरेश्वर' बन गये।

भारतभ्रमण धर्मयात्राएं :—

शङ्कराचार्य जी ने अब दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। वहाँ फैले पाशुपत, वष्णव, वीर शैव आदि अनेक मताभासों के खण्डन का कार्य 'श्री सुरेश्वर' द्वारा सम्पन्न कराया और अद्वैतमत की स्थापना की। वहीं पर एक दिन उग्र भैरव नामक कापालिक ने आकर शङ्कर से याचना की हे यति-श्रेष्ठ! आप अनेक गुण सम्पन्न हैं, देहाभिमान शून्य हैं, परोपकार निरत है, मैं आज भगवान् भैरव की आपके शिर से हवन करके पूजन करना चाहता हूं, जिससे मुझे इसी देह से कैलाश प्राप्ति हो सकेगी; आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें'....आदि। शङ्कर बोले—'ठीक है यह शरीर तो नाशवान है ही, अच्छा है किसी के काम आ जाय। परन्तु मेरे शिष्य तुम्हें ऐसा नहीं करने देंगे। अतएव जब वे कहीं अन्यत्र गये हुए हों तब आकर मेरा शिर काट कर ले जाना और अपने अभीष्ट सिद्ध कर लेना।' जब उग्र भैरव मदिरा की मस्तीमें झूमता हुआ हाथ में तीक्ष्ण-धारयुक्त

त्रिशूल और तलवार लेकर आचार्य के निकट शिरछेदन हेतु उपस्थित हुआ तो, आचार्य ने शरीर त्यागने का विचार करके प्रणव का जाप प्रारम्भ कर दिया और समाधि लगा ली। जैसे ही कापालिक ने शिर काटने के विचार से तलवार उठवायी तुरन्त उनके शिष्य पद्मपाद ने ध्यान में सब कुछ देख लिया वह तुरन्त नृसिंह रूप धारण करके उग्रभैरव कापालिक पर कूद पड़े और त्रिशूल से उसका वक्ष-विदीर्ण कर डाला। सब शिष्य मण्डली भी आ गयी परन्तु आचार्य शङ्कर शान्त, निर्विकार, निश्चल भाव से बैठे थे, कापालिक का शिर शरीर रक्त से लथपथ पड़ा था।

दक्षिण यात्रा करते हुए आचार्य श्री श्रीशैल पर्वत से चलकर गोकर्ण तीर्थ पहुँचे। वहाँ पुत्र के मरने पर एक ब्राह्मण-दम्पत्ति को विलाप करते देखा तो दयार्द्र शङ्कर ने निजयोग बल से उस मृतक बालक को जीवित कर दिया। शङ्कर की यात्रा के साथ-साथ उनके योगबल, सिद्धि, प्रखर पाण्डित्य अगाध ज्ञान की यशपताका चतुर्दिक फहराती चल रही थी।

वहीं पर अग्रहार ब्राह्मणों के 'श्री बलि' नामक ग्राम में एक सुसम्पन्न, प्रतिष्ठित ब्राह्मण प्रभाकर के एक ही पागल पुत्र था। गूंगा, बहरा, प्रमादी, जड़वत् रहता था वह। वैसे रूपवान, तेज-वान्, क्षमावान् था बड़ा स्वस्थ था। परन्तु पढ़ने-लिखने में निरा जड़ था—पिता ने लाकर आचार्य के श्री चरणों में बलात् डाल दिया और बोले–'तेरह वर्ष का हो गया है उपनयन भी करा दिया है, परन्तु गायत्री मन्त्र तक इसे नहीं आया। निरा मूर्ख है! मारने पर, छेड़ने पर भी बालकों को कुछ नहीं कहता। भोजन भी किया कभी नहीं किया, कहना मानता नहीं; मस्ती में आलसी की भांति पड़ा रहता है।, —शंकर ने बालक से पूछा—'तुम कौन हो ? जड़वत् क्यों आचरण करते हो ?—शंकर से नेत्र मिलते ही उनकी कृपा होते ही दृष्टि पड़ते ही वह बालक बोल उठा—'मैं जड़ नहीं हूँ। मेरे सामीप्य से जड़ तो प्रवर्तित हो जाते हैं। मैं आनन्दरूप, देह, इन्द्रियाँ आदि से रहित, 'तत्' पद के द्वारा बोध्य चैतन्य रूप हूँ। षट् उर्मियों और षट विकारों से रहित हूँ।' —हथेली पर रखे आँवले की भाँति परमात्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले बारह श्लोकों में उस बालक ने अपने स्वरूप का परिचय दिया। शङ्कर ने इसका नामकरण किया—'हस्तामलक' जो आगे चलकर द्वारका-शारदापीठ के प्रथम शङ्कराचार्य के पद पर प्रतिष्ठित किये गये आचार्य शङ्कर के द्वारा।

वहाँ से आचार्य शङ्कर ने शृंगगिरि की ओर यात्रा की तथा वहाँ शारदाम्बा की स्थापना की। 'तोटक' सदा आचार्य सेवा में निरत रहते थे। एक दिन जब तोटक गुरूजी की कोपीन आदि धोने नदी तट पर था तब शान्ति पाठ का समय उपस्थित होने पर आचार्य ने अन्य विद्यार्थियों से कहा कि 'अभी ठहरो पल भर में गिरि भी आ जायगा तब शान्तिपाठ प्रारम्भ करना'—इस पर पद्मपाद ने जड़ दीवार की ओर संकेत किया और मन में विचार किया कि आचार्य उस मन्दबुद्धि शास्त्र के अनधिकारी जड़ शिष्य तोटक के लिये प्रतीक्षा क्यों कर रहे हैं।' —आचार्य ने पद्मपाद के मनोभावों को समझकर तुरन्त सम्पूर्ण चौदहों विद्याओं का उपदेश गिरि को कर दिया, शिष्य ने गुरू कृपा से तत्क्षण समस्त विद्याओं को प्राप्त कर लिया और तुरन्त उनके मुख से ब्रह्मतत्त्वसूचक ललित तोटक-छन्द में गुरु की स्तुति फूट पड़ी। उस तोटक छन्द के कारण उनका नाम पड़ा—'तोटकाचार्य' जो सुप्रसिद्ध ज्योतिष्पीठ के सर्वप्रथम शङ्कराचार्य पद पर अभिषिक्त किये गये स्वयं आद्य श्री शङ्कराचार्य जी द्वारा।

इस प्रकार अब आचार्य शङ्कर के साथ सहस्रों की संख्या में शिष्य मण्डली थी जिनमें प्रमुख थे चार शिष्य जो आचार्य पद से विभूषित थे और यही चारों पीठों पर प्रथम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किये गये ।

साहित्य सृजन :—

आचार्य विचार क्रान्ति का शंखनाद फूंक रहे थे, सिद्धांत की लड़ाई लड़ रहे थे विभिन्न अवैदिकों द्वारा अर्थ का अनर्थ करके विपुल साहित्य की सम्पूर्ण राष्ट्र में रचना हो चुकी थी, उसी का प्रचार-प्रसार हो रहा था। सम्पूर्ण वातावरण को वेद विरूद्ध बनाकर विषाक्त बना दिया गया था। अतएव शङ्कर ने जहाँ एक ओर दिग्विजय द्वारा शास्त्रार्थों की पद्धति अपनायी, वहीं विपुल साहित्य की रचना करके वैदिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। उन्होंने स्वयं तो भाष्य आदि की रचना की ही साथ ही अपने शिष्यों द्वारा भी सह-ग्रन्थों का प्रणयन कराया। 'सुरेश्वराचार्य जी' द्वारा—'नैषकर्म्य-सिद्धि' 'वृहदारण्यकोपनिषद एवं तैत्तिरीयोपनिषद के भाष्यों पर वार्तिक ग्रन्थ लिखे गये। पद्मपादा-चार्य' ने शारीरिक भाष्य पर सुन्दर टीका लिखी जिसके पूर्व भाग का नाम 'पंचपादिका' एवं उत्तर भाग का नाम 'वृत्ति' हुआ। अपनी दक्षिण यात्रा के समय वह अपने पूर्वाश्रम के मामा के घर उक्त ग्रन्थ को रखकर आगे चले गये। मामा थे मीमांसक। ग्रन्थ पढ़कर वे अवाक् रह गये। ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्तों का खण्डन करने का उनका सामर्थ्य नहीं था। अतः पद्मपाद के रामेश्वरम् यात्रा पर जाने पर घर में अग्नि लगाकर उक्त ग्रन्थ को भस्म कर दिया मामा ने। इस समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भारत की चारों दिशाओं में एक छोर से दूसरे छोर तक 'शङ्कर साहित्य' ने विद्वत् समाज में क्रान्ति मचा दी। सर्वत्र वेदान्त सिद्धान्त का पतिपादन हो रहा था। आचार्य शङ्कर अब केरल प्रदेश की यात्रा की ओर उन्मुख हुए ।

माता का दाह संस्कार :—

अपनी इस यात्राकाल में ही आचार्य शङ्कर ने निज योग बल से देखा कि माता अत्यन्त रुग्ण हो रही हैं और वे मन ही मन शङ्कर का स्मरण कर रही हैं; वह तुरन्त माता के पास पहुँच गये और उनके श्री चरणों में प्रणाम् कर बोले—'मैं तुम्हारा पुत्र शंकर आ गया माँ। शोक का परित्याग कर मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है ? —बेटा ! अब इस वृद्ध शरीर को ढोने में असमर्थ हूँ; अतः शा, त्रानुसार मेरा संस्कार करके स्वर्ग पहुँचाओ। माता ने निर्देशित किया। शंकर ने निर्गुण, निराकार ब्रह्म का उपदेश दिया तो माता बोली—'बेटा मुझे निर्गुण के स्थान पर सगुण ईश्वर का उपदेश करो उसी में मेरा मन रमण करता है।' —तब शंकर ने देवाधिदेव महादेव शंकर की स्तुति की प्रसन्न होकर शंकर ने अपने गणों को भेजा। शंकर के त्रिशूलधारी दूतों को देखकर माँ बोली—'बेटा ! मैं इनके साथ नहीं जाऊँगी' —तब शंकर ने विष्णु भगवान की स्तुति की—'चन्द्रमा के समान कान्तिवाले शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी सुन्दर दूत दिव्यविमान लेकर आ गये और उस विमान पर बैठकर 'मातृश्री' विष्णुलोक प्रयाण कर गयीं। शंकर ने सन्यासी होते हुए भी स्वयं माता का विधिवत् दाह संस्कार किया। यहीं आकर पद्मपाद ने 'पञ्चपादिका' ग्रन्थ के जल जाने की सूचना दी तो आचार्य ने तुरन्त शब्दशः लिखबा डाली। केरल नरेश ने जो तीन संस्कृत नाटक उन्हें सात वर्ष की आयु में घर पर सुनाये थे वह भी जल गये थे; अतः राजा बड़े दुःखी थे। राजा द्वारा बताने पर आचार्य ने उन्हें भी यथावत् लिखवा दिया—ऐसे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे आचार्य जिनकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक थी।

दिग्विजय :—

आचार्य शंकर केरल निवासी थे वहाँ से काशी, प्रयाग, ऋषिकेश, बदरीनाथ, केदारनाथ आदि स्थानों पर विशेषतः एवं साधारणतः सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके साधना, तपस्या, विद्वत्ता एवं योगसिद्धियों के चमत्कार का प्रकाश विकीर्ण कर चुके थे; सम्पूर्ण भारत में फैले विभिन्न अवैदिक मतावलम्बियों में खलबली मच गयी थी ; शंकरसिद्धान्त रूपी प्रखर सूर्य के सामने सभी तथाकथित मतावलम्बी खद्योतवत टिमटिमा रहे थे। आचार्य शंकर ने बिना तीर, तलवार, तोप, बन्दूक का प्रयोग किये ऐसी विलक्षण विचारक्रान्ति का सूत्रपात किया कि बड़े-बड़े दिग्गज भी हिल उठे। विश्व इतिहास में केवल सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि एवं ज्ञान के बल पर आचार्य शंकर ने इस पवित्र राष्ट्र में एक छोर से दूसरे छोर तक वैदिक सनातन शाश्वत सिद्धान्तों की पुर्नस्थापना कर दी। परन्तु उन्हें स्थायी रूप देने का कार्य अभी शेष था। भगवान वेद व्यासजी के निर्देशानुसार सोलह वर्ष की आयु प्राप्त करके आचार्य ने पुनः सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक–दार्शनिक दिग्विजय यात्रा करने का दृढ़ निश्चय लिया ।

आगे-आगे दण्ड कमण्डलु कोपीनधारी, षोडशवर्षीय यति–शंकर, साथ में कई सहस्र शिष्यों का समुदाय, राजा सुधन्वा एवं उनका परिवार चलता था जिधर को भी पग उठ जाते आचार्य के उसी दिशा में पाखण्ड, अज्ञान, अधर्म का टिमटिमाता दीप, अद्वैत सिद्धान्त रुपी सूर्य के समक्ष एकदम बुझ जाता शान्त हो जाता है। धुर दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर क्षेत्र में देवी पूजन के नाम पर मदिरापान ने ही परमधर्म का रूप ले लिया था, उन्हें परास्त कर चोल, द्रविड़ प्रदेशों को जीतकर विदर्भ प्रान्त में अद्वैत मत का का डंका बजाया। कर्णाटिक प्रदेश में वाममार्गियों द्वारा वामाचार का प्रचार-प्रसार था वहाँ कापालिकों का आधिपत्य था जो मनुष्य की खोपड़ी से भैरव का पूजन कर मदिरा पीकर अधर्म–पाखण्ड निरत थे। मीन, मुद्रा, मैथुन, मांस, मदिरा को मानव जीवन का चरम और परम लक्ष्य मान रहे थे। उन उन्मत्त कापालिकों ने वेदज्ञ–ब्राह्मणों को मारकर नरमुण्डों से भैरव पूजन हेतु आक्रमण कर दिया। ब्राह्मण भयभीत होकर शंकर के पास गये अपना दुःख बताया। आचार्य श्री ने अपनी हुँकार से अग्नि की ज्वाला प्रकट कर दी और कापालिक उसमें भस्म हो गये।

दक्षिणी प्रदेशों में अद्वैतमत की पुर्नस्थापना करके शंकर ने पश्चिमी क्षेत्रों में दिग्विजय आरम्भ की। वहाँ द्वारका आदि प्रदेशों में पाँचरात्रों का आधिपत्य था, शंकर ने उन्हें परास्त कर दिया। मध्यदेश में वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर आदि मतावलम्बियों ने धर्म के नाम पर जो पाखण्ड ढोंग उस समय फैला रखा था—शंकर ने वहाँ जाकर उन सबको परास्त किया। आचार्य शंकर का तप, तेज, ज्ञान वैदुष्य इतना प्रचण्ड था कि जहाँ उनके चरण पड़े ; वहाँ के अवैदिकमतों की दीवार भरभराकर ढह जाती, धराशायी हो जाती और आचार्य शंकर का वैदिक मत का किला वहाँ खड़ा हो जाता। सारा विपरीत वातावरण परिवर्तित हो जाता। इस प्रकार आचार्य ने उत्तर से दक्षिण तक एवं पूर्व से पश्चिम तक सदलबल घूम-घूम कर वेद विरूद्ध सभी मत-मतान्तरों-वादों का मौलिक खण्डन कर दिया। क्या बौद्ध, क्या जैन, क्या चार्वाक और क्या अन्य वाममार्गी आदि—सब अस्त हो गये। तत्कालीन विद्वानों ने एक स्वर से आचार्य शंकर से सैद्धान्तिक पराजय स्वीकार कर ली। उनके शिष्य बनकर वैदिक पताका के वाहक बन गये।

संगठन :—

अभिनवगुप्त सरीखे विद्वानों ने शिष्यता स्वीकार कर ली। देश की चारों दिशाओं में चारों वेदों का आधार मानकर धार्मिक दृष्टि से चारों क्षेत्रों में परिसीमित करके चार मठों की स्थापना की जिन पर अपने चारों प्रमुख शिष्यों को प्रथमाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। उत्तर में ज्योतिर्मठ पर दक्षिण के तोटकाचार्य को आसीन किया तो दक्षिण के श्रृंगेरीमठ पर सुरेश्वराचार्य (मण्डन मिश्र) को जो कि उत्तर भारतीय थे उनको अभिषिक्त किया। पूरब के गोवर्धनमठ के प्रथमाचार्य बनाये गये पाद पद्माचार्य तो पश्चिम के द्वारका-शारदामठ पर उन्होंने हस्तामलक को बैठाया—इन सबको उन्होंने शंकराचार्य नाम दिया। और निर्धारित किया कि इन पीठों पर बैठने वाले, अभिषिक्त किये जाने वाले सभी आचार्यों को 'जगद्गुरूशंकराचार्य' पदनाम से सम्बोधित किया जाय। आचार्य शंकर की योग्यता, संगठनशक्ति, दूरदर्शिता का यह ज्वलन्त प्रमाण है कि ढाई हजार वर्षों से यह परम्परा आज भी समय के थपेड़े खाने पर भी यथावत् अक्षुष्ण चली आ रही है। विश्व के इतिहास में संगठन की इस कार्य पद्धति का कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आचार्य श्री ने इनके संचालन के लिये संविधान बनाया। जिसमें इन पीठों पर बैंठने वाले आचार्यों के लिये कुछ योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं तथा बड़े सुन्दर नियम बनाये हैं—इन पवित्र धर्मपीठों पर अभिषिक्त होने वाले धर्माचार्यों के लिये जो अर्हताएँ इसमें निर्धारित की गयी है वह अनुपम हैं। वास्तव में यह उच्चकोटि की पावन परम्परा को अक्षुष्ण बनाये रखने के प्रयोजन से निर्मित एक परम पवित्र आचार संहिता है, जिसे महानुशासन का नाम दिया है आचार्य शंकर ने। पदासीन आचार्यों के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए इसमें निर्देशित किया गया है कि—'वह पृथिवीतल पर सदा भ्रमण करते रहे ; अपने धर्म का विधिवत् पालन करें। किसी प्रकार अपने धर्म का निषेध न करें। लोग वेद विरूद्ध धर्म का कितना आचरण कर रहे है, इस बात की जानकारी हेतु निर्दिष्ट क्षेत्र में सदा घूमता रहे। राष्ट्र की प्रतिष्ठा करने के लिये भली प्रकार भ्रमण करे। मठ में नियत रूप से कभी निवास न करे। हम लोगों ने वर्णाश्रम धर्म के जिन सदाचारों को शास्त्र द्वारा उचित रीति से सिद्ध कर दिया है, उनकी रक्षा अपने अपने भाग में विधि पूर्वक करे।............।' योग्यता का निर्देश करते हुए आचार्य शंकर ने अपने महान् शासन में कहा है कि—'पवित्र जितेन्द्रिय वेद-वेदाङ्ग का विद्वान योग्य तथा समस्त शास्त्रों का ज्ञाता व्यक्ति ही मेरे स्थान (शंकराचार्य पद) को प्राप्त करे, इन गुणों से युक्त व्यक्ति ही मेरे पीठ का अधिकारी हो सकता है, यदि इन गुणों से विहीन हो और वह पीठ पर आरूढ़ हो गया हो तो भी विद्वानों को चाहिये कि उसका निग्रह करें।' इसी प्रकार कर्तव्यों एवं योग्यताओं का भली प्रकार निर्धारण करके आर्चायशंकर ने आचार्य पद पर अभिषिक्त होने वाले पीठाधीशों के लिये छत्र, चामर, सिंहासनादि का विधान करते हुए स्पष्ट निर्दिष्ट किया है कि वे जल में कमल के समान सदा इनसे निर्लिप्त रहे। कहना नहीं होगा कि उनकीं इस दूरदर्शितापूर्ण वसीयत (महानुशासन) में वर्णित निर्देशों के अनुपालन का ही यह सुपरिणाम है कि अनेक राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रहारों के सतत आघातों को सहन करके भी वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था इस पुरातन-सनातन देश भारत में अविच्छिन्न चली आ रही है।

सर्वज्ञ पद प्राप्ति :–

उस समय सम्पूर्ण देश में विद्या का प्रचार–प्रसार था जो भी प्रमुख विद्याकेन्द्र थे, देश के उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण में, सब पर शङ्कर के अद्वैत सिद्धान्त ने वैदिक धर्म की पताका फहरा दी थी; परन्तु राष्ट्र का मुकुटमणि काश्मीर अभी भी शेष था। वहाँ एक से एक बढ़कर विद्वान भरे पड़े थे। संस्कृत, विद्या, ज्ञान, एवं विद्वता का तो वह केन्द्र था। वहाँ स्वयं वाणी की अधिष्ठात्री देवी माँ शारदा निवास करती थीं। शारदा मन्दिर के चार द्वार थे मध्य में पीठ स्थापित थी। पण्डित समाज के बीच जो सर्वज्ञ प्रमाणित हो जाय, सिद्ध हो जाय, सर्व मान्य हो जाय वही उस पीठ पर आरूढ़ हो सकता था। आचार्य शंकर काश्मीर पहुँचे: वहाँ देखा शारदा मन्दिर के पूर्व, पश्चिम, उत्तर के द्वार तो प्रवेश हेतु खुलते हैं परन्तु दक्षिण द्वार बन्द है। आचार्य दक्षिण देश के थे। अत: शारदा मन्दिर के दक्षिण द्वार को जैसे ही आचार्य ने खोलकर प्रवेश करना चाहा तो वादी लोगों ने रोक दिया। आचार्य ने कहा कि—'मेरी परीक्षा के लिये जिसकी इच्छा हो वह आगे आये। मैं सब वस्तुओं को जानता हूँ; अणुमात्र भी ऐसा नहीं जिसे मैं नहीं जानता।' —तदनन्तर वैशेषिक, नैयायिक, सांख्यवादी मीमांसक, सौत्रान्त्रिक, विज्ञानवादी–बौद्ध तथा जैन मतावलम्बियों ने क्रमशः आचार्य से मौलिक एवं सैद्धान्तिक गूढ़ प्रश्न किये जिनका आचार्य शंकर ने तुरन्त सटीक उत्तर देकर उन्हें निरुत्तर कर दिया। इस प्रकार सभी दार्शनिकों को शंकर ने सन्तुष्ट कर वेदान्तमत की वहां प्रतिष्ठा की। वह सब द्वार से हट गये आचार्य ने दक्षिण द्वार से प्रवेश करके जैसे ही मां सरस्वती की सर्वज्ञ पीठ पर बैठना चाहा। तुरन्त सरस्वती ने शरीर रहित वाणी से कहा—'आपकी सर्वज्ञता तो प्रमाणित हो चुकी है। परन्तु सर्वज्ञता के साथ-साथ इस पीठ पर आरूढ़ होने के लिये शुद्धि की भी अनिवार्यता है। तुमने सन्यासी होते हुए भी स्त्रियों का उपभोग कर कामकला के रहस्यों का अध्ययन किया। क्या यह उचित है? शंकर ने तुरन्त उत्तर दिया कि—मैंने इस सन्यासी शरीर से जन्म से आज तक कोई पातक नहीं किया; कामकला रहस्य अध्ययन भी मैंने अन्य शरीर से किया सन्यासी शरीर से नहीं! अन्य शरीर से किये गये कर्म के लिये यह शरीर लिप्त हो सकता है क्या?' माँ सरस्वती शंकर के इस सटीक उत्तर से सन्तुष्ट हो गयी और आचार्य शंकर का सभी विद्वत समाज, पण्डितों एवं माँ सरस्वती ने बड़ा सम्मान तथा आदर किया और उन्हें सर्वज्ञ पीठ पर आरूढ़ कर दिया। आचार्य श्री ने यह अद्वैत मत की प्रतिष्ठा के लिये किया था।

अब समस्त देश में एक छोर से दूसरे छोर तक सनातन वर्णाश्रम वैदिक धर्म की दुन्दुभि बज रही थी। सभी दुर्बल एवं नास्तिक मतों का खण्डन हो चुका था; पाखण्ड धूलि धूसरित हो चुका था। जनता सदाचार परायण होकर स्वधर्म में निरत थी। आचार्य अपने बत्तीसवें वर्ष में थे। तब वे कुछ शिष्यों के साथ बदरीनारायण गये। वहाँ विद्वानों को शारीरिक भाष्य पढ़ाया। तत्पश्चात् केदार नाथ धाम पहुँचे। वहाँ सब ऋषि–मुनि समुदाय, देवमण्डली एकत्र हो गयी। सबने मिलकर शंकराचार्य की स्तुति की। युधिष्ठिर संवत् २६६२ में शंकर ने परमायु पूर्ण होने के कारण लीलासंवरण की इच्छा प्रगट की। उसी समय उनके संकल्पानुसार प्रमथगणों के साथ सुसज्जित नन्दी शंकर के समक्ष उपस्थित हो गया। इस प्रकार सबके देखते-देखते वे अपने वाहन नन्दी पर बैठकर कैलाश चले गये। सभी ऋषि–मुनि –देवगण आदि पुष्प वर्षण एवं भगवान शंकर की जय-जयकार कर रहे थे।

अभिनवशङ्कर स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

प्रथम खण्ड

जी व न - जा ह्न वी

(पूर्वार्द्ध चरित—भाग)

विक्रम संवत १९६४, श्रावण शुक्ल द्वितीया, रविवार (सन् १९०७ ई०)

विक्रम संवत् २०३८, माघ शुक्ल चतुर्दशी रविवार (सन् १९८२ ई०)

'अभिनन्दन'

ओ धर्म-सनातन के प्रहरी तव अभिनन्दन।
ओ वर्णाश्रम के संरक्षक तव अभिनन्दन॥
हे देव-रूप! हे अनासक्त! हे पूर्णकाम!
हे पुण्य-पुरुष! हे विश्वबन्धु! अभिनवशङ्कर!
हे शुद्धचित्त! हे विश्वबन्धु! हे आप्तकाम!
हे दिग्विजयी! हे वेदपुरुष! हे योगेश्वर!
कर दिया अवैदिक तत्वों का मौलिकखण्डन॥ ओ धर्म..........
हे जीवन्मुक्त, दण्डधारी, हरिहरानन्द
हे ब्रह्मरूप, साकाररूप-सच्चिदानन्द॥
हे परमसिद्ध, आचार्यचरण, सत्पथ के यात्री।
गो-द्विज-श्रुति-रक्षण हेतु बने स्वामी 'करपात्री'॥
चरणारविन्द में 'कृष्ण'-समर्पित कोटिनमन-
ओ धर्म सनातन के प्रहरी तव अभिनन्दन।
ओ वर्णाश्रम के संरक्षक तव अभिनन्दन॥

"अभिनवशंकर स्वामी श्री करपात्री जी महाराज"

सनातन वैदिक धर्म को सर्वोच्च सिंहासन पर आसीन करके आद्य श्री शंकराचार्य कैलास धाम पधार गये । भारत में ग्राम पंचायत पर आधारित लोक-प्रतिनिधियों, परिषदों, मन्त्रियों, पुरोहितों आदि के माध्यम से धर्म–नियन्त्रित राजतन्त्र प्रतिष्ठित था । सर्वत्र धर्मशास्त्रानुसार ही शासनतन्त्र का संचालन होता था । अधिनायकवादी राजतन्त्र की निरंकुश सत्ता के स्थान पर, अध्यात्मवाद पर आधारित शासनतन्त्र चलता था जिसमें सभी शासन एवं न्यायप्रणाली धर्मानुसार धर्मशास्त्रानुसार चलती थी । राजा पर भी निस्पृह, त्यागी, तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ राजपुरोहित, मन्त्री, अमात्य आदि के माध्यम से धर्म का अंकुश रहता था । प्रजा धर्म नियन्त्रित थी, राजा पर भी धर्मशास्त्र नियन्त्रित मन्त्रीपरिषद का वर्चस्व रहता था । परिषद में निर्लेप त्यागी, तपस्वी, निर्लोभी, धर्मशास्त्रों के ज्ञाता विद्वान ही रहते थे । इस प्रकार लगभग एक हजार वर्ष तक शंकर द्वारा प्रतिष्ठित वेदान्त सिद्धान्त एवं वैदिक सनातन विचारधारा से यह राष्ट्र आप्लावित रहा । दैवदुर्विपाक से धार्मिकता के प्रति शैथिल्य आया और धर्मशैथिल्य के कारण राजागण परस्पर राग–द्वेष से प्रेरित होकर संघर्ष रत होने लगे । धर्माचरण में कमी आने लगी । इधर आन्तरिक स्थिति तो इस प्रकार की थी ही, उधर बाहर से विदेशियों के आक्रमण भी होने प्रारम्भ हो गये ; शकों एवं हूणों ने अनेक बार भयंकर आक्रमण किये, परन्तु आत्मा की अजर अमरता में विश्वास रखनेवाली इस वैदिक सनातन, अध्यात्मवाद पर आधारित विश्व की सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक शक्ति ने उन्हें बुरी तरह मार भगाया । कालान्तर में अफगानों-पठानों ने देश पर आक्रमण किया और हमारी राजनीतिक पराजय हुयी, परन्तु वैदिक धर्मावलम्बियों ने उस संकटकाल में धैर्य नहीं खोया और अफगानों की राजनीतिक शक्ति का ह्रास होने लगा तो हिन्दू ने बल संचय किया किन्तु तभी मुगलों ने अफगानों को धर दबोचा । सनातन वैदिक अध्यात्मवाद पर आधारित शंकर के अनुयायियों राणा सांगा आदि सूर्यवंशियों से मुगल थर-थर काँपते रहे । कालान्तर में मुगलों का भी पतन प्रारम्भ हुआ, हिन्दु की जीवनी–शक्ति सदा अदृश्य अग्नि की भाँति भीतर ही भीतर धधकती रही । उसकी सहन शक्ति की कोई तुलना इतिहास में नहीं मिलती । उन्होंने हिन्दू कुल भूषण, गोब्राह्मण प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी के नेतृत्व में हिन्दु राज्य की स्थापना की जिसका श्रेय तत्कालीन ब्रह्मवेत्ता, वेदान्तनिष्ठ महात्मा श्री समर्थ गुरू रामदास जी महाराज को ही प्राप्त है ।

सारांश ! यही कि लाखों ही नहीं अपितु वर्तमान सृष्टि के पौने दो अरब वर्षों के काल खण्ड में कुलमिलाकर यह वैदिक धर्मावलम्बी सनातन जाति एवं राष्ट्र कुछ सौ वर्षों के लिये संघर्ष

में पराजित होने के कारण संकट में फंसी रही और दुर्भाग्य की घड़ियाँ साहस से काटती रही। परन्तु अन्ततोगत्वा अपनी जीवनी शक्ति पुनः प्राप्त करली। शक, हूण, अफगान, पठान, मुगल सभी आते रहे परन्तु अन्ततोगत्वा अन्तिम विजय हिन्दुओं की ही हुयी। बड़े बड़े अत्याचार सहन करके भी वर्णव्यवस्था की सुन्दर नींव पर आधारित सनातन, वैदिक, हिन्दु संस्कृति सभ्यता का सुदृढ़ भवन अक्षुण्ण बना रहा; समय के भयंकर थपेड़ों को साहसपूर्वक सहन करता हुआ अरबों वर्षों के इतिहास में गौरव से दृढ़ता पूर्वक अपने पग जमाये हुए खड़ा है। जबकि यूनान मिश्र, रोम आदि विश्व की सभी अन्य संस्कृतियाँ नामशेष रह गयीं। विश्व का ऐसा कोई समाज, मत, धर्म, राष्ट्र, जाति नहीं है जिसके अनुयायियों ने इतने समय तक राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा की है। जितनी हिन्दु धर्म ने की है। यह जो आरोपित किया जाता है कि हिन्दु समाज को वर्णव्यवस्था ने निर्बल और विभाजित बना दिया-यह भयंकर भूल है और राजनीतिसे प्रेरित विदेशियों द्वारा तैयार की गयी वह विषैली घूंटी है जिसे पीकर हमारे बड़े-बड़े राष्ट्र भक्त विचारकों की बुद्धि भी भ्रमित हो गयी। विदेशी मुसलिम शासकों ने भले ही घोरतम अत्याचार किये, बलात् धर्म परिवर्तन किये, हमारी संस्कृति, सभ्यता, धर्म के मानबिन्दुओं को नष्ट-भ्रष्ट किया, शास्त्रों की होली जलायी, मंदिरों को ध्वन्स किया-परन्तु हिन्दु की वर्ण व्यवस्था, जाति-समीकरणों, खान-पान रीति-रिवाजो, विवाहादि संस्कारों की पद्धति, पूजाउपासना की प्रणालियां, स्वतन्त्र शिक्षा केन्द्रों आदि को परिवर्तित करने का प्रयास नही किया इसी का यह परिणाम हुआकि हमारी वैदिक-सनातन-शाश्वत-आध्यात्मिक विचार धारा की जीवनी शक्ति बनी रही, हमारी रगों में सतत प्रवहमान रही, वर्णसाकंर्य जाति सांकर्य आदि से बची रही अत्याचारों के समक्ष यह जाति गिरती रही, टूटती रही, कटती रही, परन्तु पुनः पुनः सम्भलती रही और हमारे पूर्वजों ने इस लाखों वर्षों की परम्परा में संकट की कुछ घड़ियों को छोड़कर शेष लाखों वर्षों के कालखण्ड में धर्म पूर्वक सप्तद्वीपा बसुन्धरा पर निर्बाध शासन किया। परन्तु जब हिन्दु राष्ट्र पुनः उठ रहा था मुगलों का घोरपतन हो रहा था एक तीसरी शक्ति व्यापारी बन कर आयी और अपने धोखे, छल, कपट, धूर्तता पूर्ण प्रयासों से इसने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को खूब ठगा। राजाओं की सुरक्षा के नाम पर उनको भोगविलास में फंसा दिया और शासन में हस्तक्षेप करते करते, उनके राज्य एक एक करके हड़पते हड़पते स्वयं शासक बन बैठी। लार्ड मैकाले ने हमारी सनातन-पुरातन-शाश्वत-वैदिक शिक्षा दीक्षा पर मर्मान्तिक प्रहार किया और कहा कि अब आने वाली भारतीय पीढ़ी नाम-मात्र को ही भारतीय हिन्दु, वैदिक धर्मावलबम्बी होगी। वास्तव में वह भ्रष्ट-नास्तिक व ईसाईवत् बन जायगी। सुधार शिक्षा आदि के नाम से बनी विभिन्न योजनाओं की आपातरमणीयता से भारतवर्ष के विचारक,-चिन्तक और नेतृगण भी प्रभावित हो गये। उन्हें विदेशीपन में ही सब कुछ अच्छा दिखने लगा। फलत : पूर्णतः विदेशीतत्वों से प्रभावित ब्राह्मसमाज की स्थापना की गयी और श्री राजा राममोहन राय ने सती प्रथा उन्मूलन कानून बनवाया और एक प्रकार से सभी प्राचीन-सनातन नियमों के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया गया। एक सन्यासी ने आर्य समाज के माध्यम से वैदिक ताना–बाना बुनकर कुछ ऐसा

बाह्यरूप बनाया कि सर्व साधारण मोहित हो गये। वेदज्ञ पण्डितों को न देशी राज्याश्रय प्राप्ति रही न विदेशी शिक्षा दीक्षा से दीक्षित सुशिक्षित कहे जाने वाले इस सुधारवादी समाज ने ही उनको आदर दिया। अंग्रेज की कूटनीति के शिकार बने भारत के राजनीतिक नेता गण भी बड़े गर्व से घोषणा करने लगे कि आर्य यहाँ के मूल निवासी नहीं हैं, बाहर से आये। आर्यों ने यहाँ के मूल निवासियों को गुलाम बनाया उन्हें अस्पृश्य बनाया, बुद्धि जीवियों की यह दशा हो गयी कि –'ऐ आबरुद गंगा वह दिन है याद तुमको उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा'—का गीत गाने वाले कवियों को राष्ट्र कवि बताने में ही गौरव माना जाने लगा। स्वयं को इस वतन रूपी बगीचे का निर्माण करने वाला, लगाने वाला एवं रक्षा करके सिंचन करने वाला माली कहने के स्थान पर 'हम बुलबुले हैं इसकी' बताया जाने लगा जो कहीं से उड़कर आगयीं, जिसका इस वतन रूपी वैदिक वाटिका से कोई अन्यथा सम्बन्ध नहीं अपनत्व नहीं, ममत्व नहीं रहा। अपने ही देश में हम अपने ही द्वारा विदेशी माने जाने लगे। इन्जैक्शन का विषैला प्रभाव और बढ़ने लगा तो हमारे राष्ट्र के मनीषियों को विदेशी सब कुछ अच्छा लगने लगा। अब खुले रूप से वह भारतीय सनातन, पुरातन, शाश्वत, आध्यात्मिक तत्त्वों की आलोचना करने लगे तथा विदेशी भाषा, विदेशी वेश भूषा, विदेशी संस्कृति, विदेशी सभ्यता, विदेशी–खानपान, विदेशी रीति रिवाज, विदेशी शासन व्यवस्था, विदेशी समाज व्यवस्था की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा ही नहीं करने लगे अपितु उसी ओर सक्रिय रूप से अग्रसर हो गये। समाज सुधार के नाम पर हिन्दु विवाहबिल; तलाकबिल; उत्तराधिकार बिल; असवर्ण विवाहबिल; मन्दिर प्रवेश बिल; आदि अनेक कानून बनाने लगे। वेदों का पठन-पाठन, यज्ञों द्वारा देवाराधन, शिखा–सूत्रधारण, सन्ध्यातर्पण, श्राद्धादि पितर कर्मों का अनुष्ठान, गौरक्षण पूर्वक घी दूध की वृद्धिपूर्वक व्यायामादि की व्यवस्था, तीर्थ स्थानों की पवित्रता, वेदज्ञ ब्राह्मणों की पूजनीयता, पूज्यों की पूज्यता, अपूजनीयों की अपूजनीयता, मातृ–भक्ति, पितृ–भक्ति आदि सब कुछ का विचार त्यागकर जब वैदिक वर्णाश्रम धर्म के विशुद्ध एवं वास्तविक सनातन स्वरूप के सर्वनाश एवं उनके समूलोन्मूलन करने का कुचक्र इस अध्यात्म प्रधान राष्ट्र में होने लगा।

राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर उपर्युक्त भयावह स्थिति का सामना सनातन वैदिकों को करना पड़ रहा था तो उधर बौद्धिक स्तर पर भी निरन्तर गिरावट आ रही थी। शंकर के अद्वैत-वाद के स्थान पर 'विशिष्टाद्वैतवाद' पर रामानुजाचार्यजी ने 'श्रीभाष्य' की रचना की। 'शुद्धाद्वैतवाद' की प्रस्तावना श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने की और 'अणुभाष्य' लिखा। श्री मध्वाचार्य एवं आनन्दतीर्थ जी ने 'द्वैतवादी भाष्य' की रचना की। 'द्वैताद्वैतवादी' श्री निम्बार्काचार्य जी महाराज ने 'वेदान्त पारिजात–सौरभ' नाम से भाष्य की रचना की। चैतन्य सम्प्रदाय का 'अचिन्त्यभेदाभेदवादी' भाष्य लिखा; रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा 'आनन्द भाष्य' की रचना की गयी। शैव मतावलम्बियों ने 'श्रीकण्ड भाष्य' लिखा। इन सबके साथ-साथ शांकर-वेदान्त परम्परा के अद्वैतवादी पण्डित एवं आचार्यगण भी शान्त नहीं बैठे रहे। उन्होंने भी अद्वैतमत की पुष्टि में विपुल साहित्य की रचना

करके शंकर के वेदान्त सिद्धान्त को पुष्ट किया। जिनमें सुरेश्वराचार्य, वाचस्पतिमिश्र, अमलानन्द, पद्मपादाचार्य, श्री हर्ष, विद्यारण्य, सर्वज्ञात्ममुनि, मधुसूदन सरस्वती, अप्पयदीक्षितजी आदि का नाम विशेष उल्लेख्य है।

उधर पाश्चात्य दार्शनिकों से भी शंकर के वेदान्त की तुलना की जाने लगी। विदेशी शासक एवं प्रचार माध्यम भला कैसे अद्वैत को सर्वोपरि स्वीकारते। काण्ट, बर्गसां, ब्रेडले, प्लेटो, पाइथागोरस, अनाक्सागोरस, ल्यूसिप्पस, डेमोक्रिट्स, अरस्तू, डेस्कार्ट, स्पिनोजा, हीगेल—आदि सब पाश्चात्य विद्वान् एवं दार्शनिक विभिन्न प्रकार से दार्शनिक गुत्थियों का विवेचन करने में लगे रहे परन्तु भगवान बादरायण एवं गौड़पादाचार्य के वेदान्त को और आगे ले जाकर सर्वोच्च सिंहासन पर आचार्य शंकर एवं उनके अनुयायियों ने अपने विपुल साहित्य द्वारा जो स्थापित किया था, उसका भी अपलाप होने लगा और वेदों में विमान, रेल, वायुयान आदि को ढूंढ ढूंढ कर विचित्र प्रकार की मान्यताओं को आगे लाकर जनमानस को मोहित करके अपने अतीत के गौरव से विमुख किया जाने लगा यहाँ तक हुआ कि आर्य समाज के संस्थापक सुप्रसिद्ध सन्यासी स्वामी श्री दयानन्द सरस्वतीजी ने तो अपनी वेदभाष्य भूमिका में अर्थों का अनर्थ ही कर डाला और देश, काल, परिस्थिति के अनुकूल वेदों को ढालने का प्रयास किया। व्यास, गौड़पादाचार्य, शंकराचार्य सायणाचार्य, उव्वट, महीधर आदि द्वारा सुपुष्ट वैदिक अर्थों को नकारते हुए आधुनिक अर्थों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया।

इस प्रकार जब उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक स्तर पर इस देश में उथल-पुथल मच रही थी। वेदज्ञ पण्डित-समाज किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना इतस्ततः भटक रहा था। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, वर्ण-आश्रम-व्यवस्था, सामाजिक संरचना सब कुछ बिखराव की स्थिति में आ गये थे। लोग पाश्चात्य अवैदिक-अभारतीय-नास्तिक प्रायः शिक्षा—दीक्षा से प्रभावित होकर उन्हीं का अनुकरण ही नहीं अन्धानुकरण करने में लगे थे, सहोदर जान सुन्दर कोमल सर्प को ही पुष्पमाला समझकर गले से लगाकर आत्महत्या के पथ पर अग्रसर हो रहे थे, तब ब्रह्मलोक में विचार विमर्श हुआ कि 'कलिकाल के प्रथम चरण में ही सर्वनाश का दृश्य उपस्थित होना चाहता है इसे रोका जाय तथा वैदिक मूल का संरक्षण किया जाय—फलतः एक पवित्रात्मा को बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गंगा—यमुना के इस पावन ब्रह्मावर्त देश में भेजा गया। हरि एवं हर के आनन्दस्वरूप पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (श्री करपात्री) जी महाराज का आविर्भाव हुआ। उन्होंने उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में व्यापक कार्य किया। सभी विदेशी मान्यताओं का खण्डन कर सिद्ध किया कि—'यह भारत भूमि हमारी पुण्य भूमि है, कर्म भूमि है, जन्मभूमि है, हम कहीं बाहर से नहीं आये अपितु यहीं से मानवता का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार हुआ है अतः इसे बांटने काटने का विचार भी भयावह है, कृतघ्नता है। उन्होंने कहा कि—'मान्धाता, दिलीप, अज, नहुष, राम आदि इस सप्तद्वीपा वसुन्धरा के एक छत्र शासक रहे हैं; सनातन वैदिक–हिन्दुधर्म में

कोई दोष और त्रुटि नहीं हैं। हाँ! जब भी कभी हम गिरे हैं अपने धर्म की उपेक्षा के कारण ही गिरे हैं पतन को प्राप्त हुए हैं। हमारी संस्कृत-शिक्षा के अभाव में ही हमारा सर्वनाश विदेशियों द्वारा किया गया और आज भी किया जा रहा है।' उन्होंने अखण्ड भारतवर्ष के वेदज्ञ पण्डितों को ढूंढ ढूंढकर एकत्र किया, प्रोत्साहित किया तथा वेदों के 'कर्मकाण्ड' 'उपासनाकाण्ड' और 'ज्ञानकाण्ड' –इन तीनों काण्डों की रक्षा करने के लिये भीष्म प्रयास किया। दो–दो हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा वैदिक मंत्रों गायत्री-मंत्र आदि से युक्त एक करोड़ आहुतियों के साथ सम्पन्न होने वाले 'शतमुखकोटिहोमात्मक महायज्ञों' से लेकर घरघर में वैदिक अनुष्ठानों की एक शृंखला खड़ी की। देवताओं को प्रसन्न किया उनसे सम्पर्क स्थापित किया, जिससे देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुयी। उन्होंने कहा कि यदि यह नास्तिक वादी, साम्यवादी तथाकथित वेदवादी (आर्यसमाजी) आदि इन यज्ञों का विरोध न करते, इनमें विघ्न उपस्थित करके बाधाएँ न डालते तो स्वतन्त्रता अखण्ड भारत के रूप में ही मिलती जहाँ की सम्पूर्ण प्रजा–हिन्दु–मुसलमान–ईसाई, पारसी, पशु, पक्षी, शूकर, कूकर कीट पतंगादि तक सब सुखी रहते। इसके लिये उन्होंने बहुत प्रयास भी किया। धर्मयुद्ध छेड़ा। परन्तु माँ के लाड़लों ने उसके अंग भंग करके ही खण्डित स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। स्वामीजी ने भारतीयता की मूलाधार 'गौ' को बताते हुए इस कृषि प्रधान देश में पूर्णरूपेण गोवध बन्दी की मांग की तो उन्हें कारावास मिला, यातनाएँ दी गयीं, पीटा गया। उन्होंने अपरिवर्तनीय हिन्दु धर्म-शास्त्रों में परिवर्तन का विरोध किया हिन्दु कोड का डटकर विरोध किया तो अपनों ही द्वारा उनका विरोध किया गया। आश्रम की कुटियाएं, पुस्तकालय, सत्संगभवन आदि फूंक दिये गये। उन्होंने स्वतन्त्र भारत के शासन विधान को भारतीयता पर आधारित होने की मांग की तो अनसुनी कर दी गयी। किसी के धर्म में हस्तक्षेप न हो—यह सामान्य माँग जिस पर विदेशी भी आचरण करते रहे—अपनों द्वारा उपेक्षित रही। अपने अपने धर्म के विश्वासानुसार उपासना, पूजा करने की सनातन–स्वतन्त्रता का भी हनन किया गया और सनातनी मन्दिरों में बलात् घुसकर उन्हें अपवित्र कर दिया गया तो स्वामीजी ने इनकी पवित्रता की रक्षा की। उन्होंने मांग की कि सब अपने अपने धर्मानुसार चलें, किसी के भी धर्म में हस्तक्षेप न हो। परन्तु वैदिक–सनातन–हिन्दुओं को इतनी भी छूट नहीं दी गयी—सम्पूर्ण जीवन परोपकार एवं धर्मसेवा में खपाने वाले इस महामनीषी ने एक भी अवसर ऐसा उपस्थित नहीं होने दिया, जब अनुचित बातों का डटकर विरोध न किया गया हो। सम्पूर्ण पाश्चात्य दार्शनिकों एवं राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन कर—'मार्क्सवाद और रामराज्य' —नामक ग्रन्थ की रचना की। 'पूंजीवाद–समाजवाद–रामराज्य' नामक ग्रन्थ की रचना कर पूंजीवादी विचारों की समालोचना की। सुधारवादी भारतीयों स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, श्री गुरु गोलवलकर आदि विचारकों द्वारा की गयी संस्कृति समीक्षा, हिन्दुत्व की परिभाषा एवं इतिहास सम्बन्धी त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए महान वैदिक राजनीतिक ग्रन्थ 'विचार पीयूष' की रचना की। विदेशी राम भक्त विद्वान पद्मश्री फादर कामिलबुल्के द्वारा लिखित राम चरित्र की विकृतियों एवं दूषित भावनाओं की ओर

रामभक्त विचारकों एवं भारतीय चिन्तकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए विशाल ग्रन्थ 'रामायण-मीमांसा' की रचना की। अपने को भगवान कहलाने वाले आचार्य रजनीश के अभारतीय विचार-दर्शन, रजनीशवाद का कसकर खण्डन करते हुए 'क्या सम्भोग से समाधि'—नामक पुस्तक लिखी। भक्ति ज्ञान-वैराग्य की त्रिवेणी बहाते हुए एवं श्री भगवत्तत्व का दिग्दर्शन कराने के लिये परमकल्याणकारी ग्रन्थ 'भक्ति-सुधा' 'भागवत-सुधा' श्री भगवत्तत्व, 'भक्ति-रसार्णव'—'श्री-विद्या-रत्नाकर' आदि ग्रंथ रत्नों की रचना की। तथा 'वेदव्यास, शंकराचार्य, सायण आदि द्वारा प्रतिपादित वेदों के सनातन स्वरूप एवंभावों की अभिव्यक्ति करते हुए 'वेदार्थपारिजात' नामक विशालकाय ग्रन्थ लिखकर संसार के सामने वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। इन्हें पढ़कर विचारक मनीषिगण सोचें कि वेदों का वास्तविक स्वरूप क्या है? किसने किस प्रकार अर्थों का अनर्थ किया है? सच्चा वैदिक मार्ग क्या है ?

काल के क्रूर प्रहारों से भगवान आद्य श्री शंकराचार्यजी महाराज द्वारा स्थापित चारों धर्म पीठों का प्रभाव भी नगण्य प्राय: रह गया था। उत्तराम्नाय ज्योतिष पीठ १६५ वर्षों से आचार्य विहीन पड़ी थी। लोग शंकर के सिद्धान्त को ही भूल से गये थे शंकराचार्यों का महत्व शून्य प्राय रह गया था। शंकरमतावलम्बी दण्डी सन्यासीगण उपेक्षित थे। समाज दिशा-विहीन हो गया था। उसे मार्गदर्शन देने वाले स्रोत सूख रहे थे। कहीं से प्रकाश नहीं मिल पा रहा था। तब स्वामी श्री करपात्रीजी ने आकर ज्योतिष पीठ पर आचार्यों की प्रतिष्ठा करवायी। अन्य पीठों पर चल रहे वाद-विवादों का निराकरण कराके उन पर अभिषिक्त आचार्यों को अ० भा० धर्मसंघ के अध्यक्षपद पर सुशोभित किया और इस प्रकार सनातन वैदिक धर्म के प्रधान चारों पीठों के शंकराचार्यों के साथ-साथ अन्य आचार्य पीठों, उपपीठों के महत्व की पुन: स्थापना करने का श्रेय इन्हीं स्वामीजी को है।

यह सब कुछ कार्य सम्पन्न करके भविष्य के लिये स्वरचित ग्रन्थों से प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्राप्त करने का धर्माचार्यों को आदेश/निर्देश देकर तथा वैदिक मूलसंरक्षण के कार्य को सम्पन्न करके वह महात्मा ब्रह्मीभूत हो गये।

अगले पृष्ठों में उन्हीं अभिनव शंकर श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के आविर्भाव, कार्य-कलाप, गतिविधियाँ आन्दोलनों, एवं विचारदर्शन पर आधारित यत्किंचित सामग्री पाठकों की कल्याण कामना से प्रस्तुत की गयी है। आशा है उन महापुरुष की पुण्य स्मृति में संकलित इस वाङ्मय की पावन गन्ध से भारतीय जनमानस पवित्र होकर निष्पक्ष, तात्विक, यथार्थ वस्तुपरक चिन्तन की ओर अग्रसर होते हुए भारत पुरातन, सनातन, शाश्वत, वैदिक, विश्व-कल्याणकारी, धार्मिक संस्कृति-सभ्यता के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये समुत्सुक होगा।

मंगलाचरण

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।।

श्री शंकराचार्यमथास्य पद्म्पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्त्तिककारमन्यानस्मद् गुरून्सन्ततमानतोऽस्मि ।।

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करूणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ।।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ।।

ईश्वरो गुरूरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने ।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय दक्षिणा मूर्त्तये नमः ।।
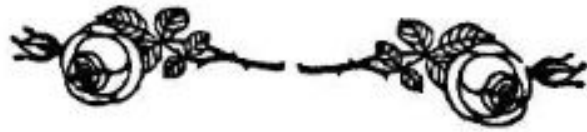
"नारायणसमारम्भां श्रीशुकाचार्य मध्यमाम्
शंकराचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।"

अद्वैताम्बुधिमन्थनोद्भवमहापीयूषवाग्वैभवः ।

श्रीमद्भारतभूमिभूतिविभवालंकारभूषामणिः ॥

श्रीमच्छंकरदेशिकेन्द्र चरणाम्भोजद्विरेफोपमः

पूज्य श्री करपात्रदण्डि नृपतिर्नम्यो बुधेन्द्रैर्नकैः ॥

जन्म से गृहत्याग तक

बचपन :—

विक्रम संवत १९६४, श्रावण शुक्ला द्वितीया रविवार सन् १९०७ ई० में जिला प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश के एक छोटे से ग्राम भटनी के एक श्रेष्ठ सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। इनके पिता का नाम पं० रामनिधि ओझा था तथा माता का श्रीमति शिवरानी। स्वामी जी तीन भाई थे जिनमें सबसे बड़े का नाम था हरिहर प्रसाद, द्वितीय का हरिशंकर तथा स्वामीजी का बचपन का नाम था हरनारायण यह तीनों भाईयों में सबसे छोटे थे। पहले इनके पितामह स्वनामधन्य श्री पं० चण्डीप्रसाद सुपुत्र पं० अमान राम जी जिला गोरखपुर के ओझौली ग्राम पोस्ट बरहलगंज में रहा करते थे। यह स्थान सरयू के तट पर स्थित है। ओझा लोगों के इस परमपवित्र छोटे से ग्राम में बड़े-बड़े महान् विद्वान हो गये हैं जिनके यश, कीर्ति एवं प्रतिष्ठा को सम्पूर्ण देश में अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। इसी परम पावन स्थान में यह पवित्र कुल निवास करता था, परन्तु बाद में कालाकांकर के राजा साहब इनके पितामह जी को जिला प्रतापगढ़ के भटनी ग्राम में ले आये थे। स्वामीजी के माता–पिता विशुद्ध सनातन धर्मावलम्बी, भगवान् शंकर एवं भगवान् राम के परम भक्त थे। पिताश्री नित्य पार्थिव पूजन रूद्राभिषेक करते थे। महाराज के मध्यम भ्राता श्री हरि शंकरजी के पुत्र शिवहर्ष जी अभी भी उस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं, नित्य पार्थिवेश्वर का रूद्राभिषेक करने के उपरान्त ही जल ग्रहण करते हैं। इनका चित्र यथा स्थान दृष्टव्य है। तथा इनके सुपुत्र श्री शिवराम ओझा जी आस्तिक और उत्साही नवयुवक हैं महाराज श्री की स्मृति में गाँव में आयुर्वेदिक औषधालय आदि की स्थापना के प्रयत्न में लगे हैं। ग्राम प्रधानजी ने उसके लिये विस्तृत भूमि देने

का वचन भी दे दिया है। महाराज श्री की जयन्ती प्रतिवर्ष ग्राम में समारोह पूर्वक मनाते हैं इसमें सर्वाधिक सहयोग काशी निवासी श्री पं० वासुदेव शास्त्री-अतुल जी का रहता है।

पिताश्री ओझा जी प्राचीन वैदिक परम्परा एवं वर्णाश्रम मर्यादाओं में पूर्ण विश्वास रखते थे। वह परम धार्मिक विचारधारा के व्यक्ति थे। अपनी इसी आध्यात्मिक विचारधारा के कारण उन्होंने स्वाजी को संस्कृत पढ़ाने का ही निश्चय किया। बालक हरनारायण अभी पांच वर्ष के ही थे कि पिताश्री को पता चला कि इन्हें गलबन्ध (हकलापन) है, वाणी स्पष्ट उच्चारण नहीं कर पाती-तो वह बड़े चिन्तित हुए और इनकी जन्मपत्री लेकर एक सुयोग्य ज्योतिषी से भविष्य फल पूछने लगे 'कि पंडित जी इसका भविष्य क्या है, यह क्या बनेगा ?'—इसके पूर्व ज्योतिषी महोदय कुछ बोले बालक हरिनारायण बोला कि 'बाबा हम तो बाबा बनेगें'—और उस दिन किसे पता था कि यह छह वर्षीय होनहार भविष्यवक्ता बालक हरनारायण वास्तव में एक दिन संसार से विरक्त होकर बाबा बन जायगा।

बालक हरनारायण की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम भटनी में ही हुयी जहाँ सीधे तीसरी कक्षा में ४-६-१६१८ को प्रवेश लिया और ३१-५-१६१६ को चतुर्थ कक्षा में नाम लिखा गया। परन्तु इनकी रूचि केवल संस्कृत अध्ययन में ही थी और पाठशाला की सीमाओं में इस किशोर का वैरागी मन नहीं लगता था अतः प्रायः वहाँ से अनुपस्थित रहने लगे जिसके फलस्वरूप १३-६-१६१६ को इनका नाम प्राईमरी पाठशाला से कट गया। और यह संस्कृताध्ययन के लिये निकट के कर्पूरी ग्राम में जाने लगे वहाँ भिमौरा ग्राम निवासी परम विद्वान् पण्डित नागेश मिश्र जी की सेवा में रहकर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। प्राईमरी पाठशाला भटनी के दाखिला रजिस्टर की नकल अन्यत्र चित्रित है; जिसकी जन्म तिथि कुण्डली की जन्म तिथि से भिन्न है। प्रतीत होता है कि दाखिले के समय सन् तो ठीक लिखा गया जबकि जन्म मास में अनुमानित लिखाया गया। कुण्डली की जन्म तिथि ही विश्वसनीय है। कुण्डली का रेखाचित्र भी साथ में दिया गया है।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर बालक हरनारायण ने घर पर ही प्रथमा तक संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। पूर्व-संस्कारानुसार इनका मन प्रारम्भ से ही सांसारिक पदार्थों से विरक्त सा रहता था। बाल्यावस्था से ही इनके मन में वैराग्य के भाव उठा करते। संसार की अनित्यता एवं क्षणभंगुरता की भावनाओं ने मन में वैराग्य उत्पन्न कर दिया, बचपन से ही आप विचारों में प्रायः निमग्न रहकर घण्टों एकान्त में बैठे रहते और न जाने किन विचारों में खो जाते। कभी आप भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, मर्यादाओं एवं धर्म के प्रति सर्वसाधारण की अनास्था की कल्पना करते तथा लोगों को अधर्माचरण करते देखते तो इनके निर्मल मन को बड़ा खेद होता। बड़ी-बड़ी कल्पनाएं उठा करतीं बालक हरिनारायण के हृदय में और इसी अवस्था में कभी घर से चल देते। सबसे छोटे होने के कारण पिताजी का इन पर बड़ा स्नेह था; अतः इस प्रकार घर से चले जाने पर माता-पिता को बड़ा दुःख होता। वह इन्हें पकड़ कर फिर घर लाते और आज्ञा देते कि घर में ही

रहो। बालक हरनारायण पिताजी के परम भक्त एवं बड़े आज्ञाकारी थे। पिता के वचनों की अव-हेलना करने का साहस इनमें नहीं था अतः यह पुनः गृह में रहने लगते। इस प्रकार कई बार घर से चले जाते परन्तु फिर पिताजी की आज्ञा पालन करने हेतु उनके आदेश से घर लौटकर आना पड़ता। परन्तु बालक के हृदय में संसार की क्षणभंगुरता अपना स्थान दृढ़ से दृढ़तर करती गयी और हरनारायण घर में रहता हुआ भी वैरागी सा ही हो गया।

उस समय उसकी अवस्था लगभग नौ वर्ष की थी।

'विवाह-गृहत्याग'

विद्वान्-कुलीन-ब्राह्मणों के इस पवित्र अंचल में उत्तम कुल में लड़के बड़ी कठिनाई से मिल पाते थे; अतः पवित्र कुलों के लड़कों को पांच-पांच, सात-सात वर्ष की आयु में ही घेर लेते थे। अतः इनके घर पर भी लड़की वालों का आना जाना प्रारम्भ हो गया था। पिता जी ने सोचा कि विवाह-बन्धन में बन्ध कर तो हरिनारायण घर-गृहस्थी में पड़ जायगा और इसकी यह संसार के प्रति उदा-सीनता एवं वैराग्य की भावना अवश्य बदल जायगी। अतः उन्होंने लगभग नौ वर्ष की आयु में बालक हरनारायण का विवाह सन् १६१६ ई० में, जिला प्रतापगढ़ के ग्राम खण्डवा, पोस्ट ढिंगवस में श्री पं० रामसुचित जी की सौभाग्यवती पुत्री कुमारी महादेवीजी से कर दिया। पिता ने सोचा था कि अब इसकी विचारधारा बदलेगी, परन्तु जिनको कुछ करना होता है; जिनके मन में देश, धर्म, सभ्यता, एवं संस्कृति के बिगड़ते हुए स्वरूप को देखकर बचपन से ही भूचाल उठा करते हैं; जिन्हें धर्म में प्रेम होता है उसके संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार के लिये कुछ कर गुजरने की प्रबल इच्छा होती है, उन्हें गृहस्थ के बन्धन नहीं रोक सकते। भगवान् को इनका कार्य-क्षेत्र केवल घर की चहार दीवारी तक ही सीमित नहीं रखना था, उन्हें इनसे कुछ और ही कार्य लेना था। फलतः विवाहोपरान्त भी हरनारायण के हृदय में राग उत्पन्न नहीं हो सका। उसके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संसार के प्रति उसकी विरक्ति पूर्ववत् बनी रही। एक दिन लोटा डोर लेकर एकाकी वह घर से निकल पड़ा। पिताजी ने फिर जा पकड़ा और कहा कि कम से कम तेरे एक सन्तान तो हो जाय तभी तुम्हारा गृहत्याग करना उचित हो सकता है।--इस प्रकार अपनी बात का औचित्य दिखाकर तथा फिर घर लौटने की पुनः आज्ञा देकर, पिताजी इन्हें फिर घर वापिस लौटा लाये। इच्छा न रहने पर भी हरनारायण को घर की सीमा में विवश होकर रहना पड़ा; परन्तु उनकी दिनचर्य्या, पूजन, भजन, मनन, सद्ग्रन्थों के पठन एवं अध्ययन में कोई प्रभाव नहीं पड़ा, कोई अन्तर नहीं आया वह उसी प्रकार चलता रहा।

अपने ग्राम में इन्होंने कई श्रीमद् भागवत् पारायण किये। पहली श्री पुखई नन्दलालजी के घर पर की (श्री नन्दलाल के सुपुत्र--मन्दिर वाले चित्र में बैठे हैं सम्प्रति ग्राम प्रधान हैं।) दूसरी भागवत् इसी मन्दिर पर कही (मन्दिर का चित्र इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।) इस कथा के श्रोताओं

में इनकी माता भी थी । तीसरी भागवत ग्राम से कुछ दूर चारिहनपुरवा में श्रीमती शिवकुमारी देवी के यहाँ की । गंगा के किनारे एक पाकर (पिलखन) का पेड़ है जिसके नीचे बैठ कर प्रायः महाराज भजन करते थे । यह स्थान गौरी शंकर की छोइयां के नाम से आज प्रसिद्ध है । इस स्थान पर पहुँचने के लिये मानकपुर जाना पड़ता है ।

अन्ततोगत्वा कुछ समय पश्चात् उनके घर में भगवतीस्वरूपा एक कन्या का जन्म हुआ । अब हरनारायण को घर की दीवारे, अन्य सामग्रियां फाड़ खाने को आने लगीं । एक-एक क्षण युग के समान बीतने लगा । इनका मन पिंजरे में पड़े पक्षी के समान फड़फड़ाने लगा । इन्हें अपना कार्य-क्षेत्र नेत्रों के सामने स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा । पिताजी की आज्ञा का पालन हुआ जान इन्होंने निश्चित रूप से अपना मार्ग निर्धारित कर लिया और एक दिन दृढ़निश्चयी, वैरागी हरनारायण घर छोड़कर जाने लगा उस समय इनकी आयु लगभग १९ वर्ष थी । पिताजी अपने स्वभावानुसार समझाने आये परन्तु उनको पिछली समस्त घटनाओं तथा आज्ञापालन का स्मरण दिलाया हरनारायण ने, एक सन्तानोत्पत्ति की आज्ञापालन करने की बात कही, जरा सा तत्त्वोपदेश भी बातों ही बातों में समझाने के रूप में सूत्र रूप से दे दिया परम आस्तिक राम–भक्त पिता को, उनके वैरागी किशोर हरनारायण ने । भगवान् हृदय में बैठे, पिता जी निरुत्तर हो गये, उन्होंने इनकी माता को भेजा उनको भी ज्ञान का मार्ग दर्शाकर तत्त्व का उपदेश बातों ही बातों में देकर कहा कि हे माता ! तुम व्यर्थ में धर्ममार्ग में क्यों बाधक बनती हो, उन्हें भी अन्त में सन्तुष्ट किया । परन्तु कोने में नन्हीं सी बालिका को गोद में उठाये अश्रुपूर्ण नेत्रों को झुकाये धर्मपत्नि खड़ी थी मौन । एक दृष्टि भर डालकर नीचा शिर किये (खड़ी थी) उर्मिला की भांति वह भारतीयता की साकार मूर्ति । उसके मौन ही ने सब कुछ कह दिया । परन्तु जिनकी दृष्टि में सब कुछ भगवान् का ही अंश है जो गोस्वामी तुलसीदास जी के कथनानुसार (सीयराममय सब जग जानी) समस्त संसार को भगवान् का ही रूप देखते हैं, उन्हें कैसा मोह ? कैसा राग ? कहाँ का बन्धन ? जिनके हृदय में अनन्त सौन्दर्य, अनन्तानन्द एवं अपरिमित स्वतन्त्रता की प्राप्ति का अंकुर उत्पन्न हो गया हो; उस परम प्रभु ने जिसका हाथ पकड़ने के लिये अपना कर कमल प्रसार दिया हो, जिससे उस परमात्मा को, देश, धर्म सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा एवं प्रचार का कार्य लेना हो, वह अब कैसे रुक सकता था ? कौन सी शक्ति उसे रोक सकने में समर्थ हो सकती थी फलतः भारत के इस होनहार युवक ने अपनी राधा-स्वरूपणी अर्धांगिनी में मातृत्व का दर्शन किया । उनकी दृष्टि में अब माता, स्त्री इत्यादि में एक ही तत्व भास रहा था, कोई भेद नहीं रह गया था । उनकी दृष्टि समस्त संसार के नारी समाज में मातृत्व के दर्शन कर रही थी । जब इनकी स्त्री ने यह देखा–सरस्वती ने उनकी बुद्धि को प्रेरित किया—भारत की उस आदर्श नारी ने धीरे से कहा कि जब इनकी इतनी उच्च दृष्टि है, ऐसी विचित्र स्थिति है तो मैं व्यर्थ में इनके आध्यात्मिक जीवन में क्यों बाधक बनूं । अरे ! भारत की उस त्यागमूर्ति ने अपने को धन्य

समझा और उनके मार्ग से विनम्रतापूर्वक एक ओर हट गयी, मार्ग छोड़ दिया। पिताजी से कह दिया कि अब इन्हें संसार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती, अतः जाने दो।

इस प्रकार संवत् १६८३ सन् १६२६ ई० में १६ वर्ष की अवस्था में सारे परिवार को रोता-बिलखता छोड़ माता-पिता के श्री चरणों में प्रणाम कर बालक हरनारायण सदा के लिये घर छोड़कर चल दिया, कभी भी फिर उस घर के स्वामी के रूप में वहाँ वापिस न आने के लिये।

यह स्मरणीय है कि जिस कन्या को गोद में लिये उसकी मां खड़ी थी और जिस कन्या के भावी जीवन की किसी भी सम्भावना का बिना विचार किये पतिपरायणा माता ने भारतीय नारी के आदर्श का निर्वाह करते हुए उन्हें धर्म पथ पर उन्मुक्त रूप से अग्रसर होने के लिये और देश, धर्म, जाति, एवं मानव समाज के कल्याण के लिये उन्हें स्वतन्त्र कर दिया था, उस कन्या को एकमात्र माता-पिता श्रीमती महादेवी जी ने इसका पालन पोषण शिक्षा-दीक्षा देकर बड़ा किया और उसका विवाह केदौरा के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में कर दिया। सुश्री भगवती देवी नाम्नी इस पुत्री का विवाह श्री रविरत्न तिवारी के सुपुत्र श्रीयुत महादेव तिवारी जी के साथ सम्पन्न हुआ। बाद में श्रीमहादेव तिवारी अपनी ननसाल खंडवा चले गये। आज दिन श्रीमती भगवती देवी सपरिवार वहीं रहती हैं। ●
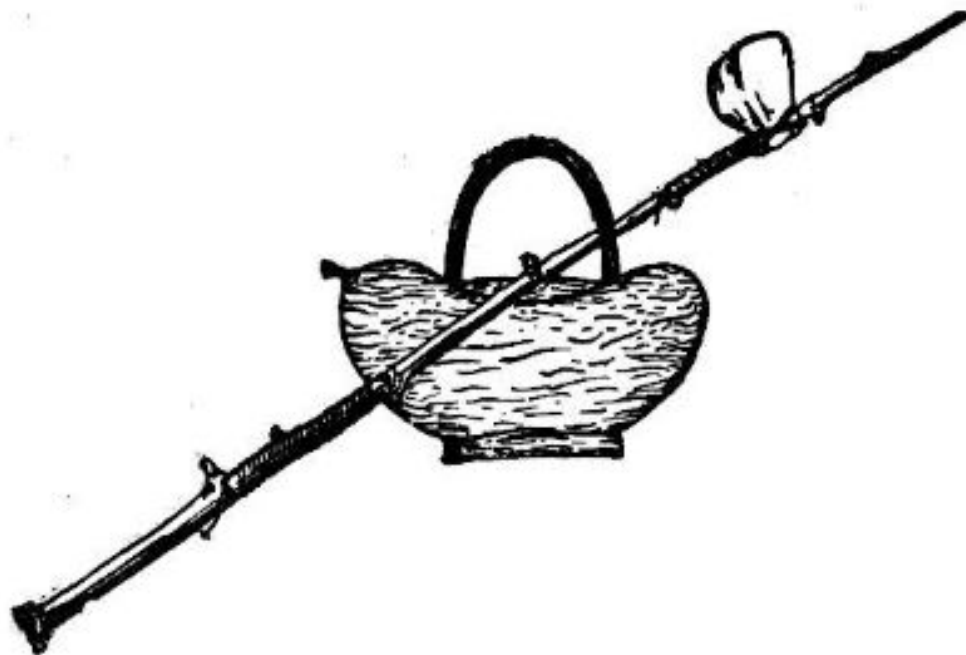
गृहत्याग के उपरान्त दण्डग्रहण तक :

'अध्ययन' :

संसार के सब बन्धन तोड़कर हरनारायण हाथ में लोटा डोर लिये बढ़ा जा रहा था आगे ही आगे। वह कहाँ जा रहा था, कहाँ उसे जाना था इसका तो स्वयं उसे भी पता नहीं था बस अनेक मन्दिरों तीर्थों एवं नदियों के तट पर भ्रमण करते करते भगवती विन्ध्यवासिनी देवी के क्षेत्र में जा पहुँचा। प्रयाग से आगे मध्य प्रदेश के वीरसिंहपुर ग्राम के एक विशालवट वृक्ष के नीचे एक टाटकोपीन धारी समाधिस्थ महात्मा के दर्शन किये। कुछ ऐसा तेज था इन महात्मा के मुखमण्डल पर कि युवक हरनारायण के बढ़ते कदम उस पवित्र उपत्यका में सहसा रूक गये और उनके श्री चरणों में प्रणाम किया तो नेत्र खोलते हुए महात्मा जी ने आशीर्वाद दिया और पूछा कि 'यहाँ क्यों आये हो क्या चाहते हो ?' 'मेरा मार्गदर्शन करें मैं इस संसार से विरक्त होकर सन्यास दीक्षा लेना चाहता हूँ—' युवक ने निवेदन किया। महात्मा जी ने युवक पर एक सम्पूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा कि 'अभी तुम नरवर जा कर विद्याध्ययन करो, तुम पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रहेगी।'

यह महात्मा थे श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ बदरिकाश्रम के जगद्गुरू शङ्कराचार्य हुए। इनसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ग्रहण कर हरनारायण से हरिहरचैतन्य बने। आज्ञा शिरोधार्य कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी के वेश में हरिहर चैतन्य प्रयाग से पुण्य-तोया गंगा के किनारे किनारे चल पड़ा एक लंगोटी व गाती बांधे और लगन वह धुन के पक्के युवक ने कुछ दिनों में ही अपने को बुलन्दशहर जनपद में गंगातट पर स्थित नरवर साङ्गवेद विद्यालय में पाया। प्राचीन ऋषियों के गुरुकुलों जैसा शान्त सुरम्य स्थान, पवित्र वातावरण जहां तपोमूर्ति, नैष्ठिक बालब्रह्मचारी श्री पण्डित जीवनदत्त जी महाराज की अध्यक्षता में देववाणी संस्कृत का प्राचीन गुरू शिष्य परम्परानुसार अध्यापन का कार्य चल रहा था। कहीं बटुकसमुदाय सस्वर वेदपाठ कर रहे थे, कहीं व्याकरण के कठिन सूत्रों का विवेचन हो रहा था। यज्ञ-धूम की पवित्रगन्ध से आश्रम सुवासित था। गंगा तट पर एकान्त नीरवस्थान पर स्थित इस आश्रम में आते ही हरिहर चैतन्य ने अनुभव किया कि वह गन्तव्य पर पहुँच गया है उन्होंने स्नान ध्यान पुरस्सर ब्रह्मचारी जी को प्रणाम निवेदन कर विद्याध्ययन करने का अपना मनोभाव प्रकट किया। इस प्रकार संवत् १९८३ विक्रमी सन् १९२६ ई० में हरिहर चैतन्य ने नरवर साङ्गवेद विद्यालय में विधिवत् अध्ययन आरम्भ कर दिया। उस समय विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे श्री पं० रामाज्ञा जी चतुर्वेदी। इन्होंने व्याकरण सम्पूर्ण ४ वर्ष की मध्यमा इन्हीं से अध्ययन कर केवल ११ मास में उत्तीर्ण की। उस समय सहायक अध्यापक

थे श्री पाठक जी। फिर १३ मास तक वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रों का अध्ययन पूज्यपाद षड्दर्शनाचार्य दण्डी स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज से किया। व्याकरण अध्ययन के साथ साथ इन्होंने 'सारस्वतचन्द्रिका' का भी अध्ययन किया। इस समय के इनके एक साथी का नाम था देवकीनन्दन इन दोनों ने साथ ही मध्यमा उत्तीर्ण की थी। पूज्य स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज से इन्होंने वेदान्त-दर्शनशास्त्रों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत का विशेष रूप से अध्ययन किया। स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज षडदर्शनाचार्य कहलाते थे—इन्हीं को हरिहर चैतन्य ने अपना गुरूवरण किया।.........गुरू जी को श्री अच्युत मुनि जी के विशेष आग्रह पर नरवर से अनूपशहर की ओर सात कोस की दूरी पर स्थित (भेरिया) 'भृगुक्षेत्र' जाना पड़ा—परन्तु विद्यार्थी हरिहर चैतन्य जी गुरू जी के साथ-साथ गये और अध्ययन में तल्लीनता पूर्वक श्रीगुरू सेवा में अहर्निश लगे रहे। अच्युतमुनि जी गंगा में नाव में ही रहते थे, वहीं साथ साथ हरिहर चैतन्य भी विद्याध्ययन करते रहे और श्रीमद्भागवत पर व्याख्याक्रम भी वहीं चलता रहा। वेदान्त पठन भी साथ-साथ चलता रहा। कुछ दिन पश्चात् गुरू जी श्री स्वामी अच्युतमुनि जी के साथ पुनः नरवर लौट आये और हरिहर चैतन्य भी नरवर विद्यालय में पुनः गुरू–सेवा में लीन रहे। उस समय युवक हरिहर चैतन्य की बड़ी विचित्र स्थिति थी। इनका हृदय बड़ा कोमल था। उस समय भगवान राम में इनकी अधिक निष्ठा थी, भजन, पूजन, ध्यान, धारणादि के साथ साथ रामायण पाठ किया करते थे पाठ करते करते इतने भावुक हो उठते थे कि जोर जोर से एकान्त में रोदन करने लगते थे। रुंधे गले से राम को पुकारा करते थे। फिर शान्त होकर श्री हनुमान जी के नाम पत्र लिखकर हनुमानगढ़ी अयोध्या के पते पर कभी डाक से और कभी गंगा भागीरथी के द्वारा भेजा करते थे।

यह पढ़ते समय साधारण परिश्रम ही करते थे। क्योंकि इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी, स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। जब यह पढ़ते थे इनके अन्य साथी इनके साथ नहीं लग पाते थे। इनका पाठ विशेष रूप से पृथक ही चलता था। जो वस्तु साधारण प्रतिभा के विद्यार्थी जीवन भर परिश्रम करके भी नहीं पढ़ पाते थे उन्हीं ग्रन्थों को इन्होंने अत्यन्त अल्पकाल में ही पढ़ लिया था। कहते हैं कि एक-एक दिन में ही पुस्तकें की पुस्तकें कंठाग्र कर लेते थे और उनका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन भी कर लेते थे।

इनका रहन-सहन, दिनचर्य्या, पूजन, भजन, भोजन सब में एक आदर्शवादिता थी, विलक्षणता थी। त्याग की इनमें प्रबल भावना थी। बचपन से ही यह निःस्पृह से रहे। यहां पाठशाला में अध्ययन काल में भी यह बाहर दूर एकान्त स्थान में एक फूंस की झोपड़ी में ही रहते थे। भोजन यह स्वयं नहीं बनाते थे अपितु नरौरा ग्राम की बस्ती से भिक्षा मांग कर लाते थे। इस प्रकार अल्पाहार एवं कठोर नियमों का पालन करते हुए अध्ययन, भागवत-प्रवचन, सद्ग्रन्थों के पठन के साथ साथ बीस वर्षीय युवक हरिहर चैतन्य कठोर साधना में लीन रहता था—

तपस्या :—

युवक हरिहर चैतन्य आश्रम के नियमों का पूर्ण पालन करते हुए एक ओर विद्याध्ययन में एकान्त भाव से अहर्निश तल्लीन था तो दूसरी ओर कठोर से कठोर व्रतों, उपवासों, योगासनों आदि द्वारा शरीर को कसते हुए इन्द्रियजय करने में लगा था। अध्ययन के समय में भी वह प्रायः अपनी उस झोपड़ी से भी दूर निर्जन स्थान पर चले जाते थे। प्रत्येक एकादशी (अथवा पूर्णिमा) को प्रायः व्रत समाप्ति पर भोजन आदि से निवृत्त होकर दूर अरण्य में गंगातट पर चले जाते। वहां ठीक बारह बजे रेणुका में एक लकड़ी गाड़ते, उसकी परछाईं पर चिह्न लगा देते और एक टांग से खड़े होकर जप, तप, अथवा ध्यान में लीन हो जाते। अगले दिन जब धूप ठीक उसी स्थान पर आती और लकड़ी की परछांयी उसी चिह्न पर आ जाती तब तपस्या से विरत होते और आश्रम को लौटते। कभी-कभी गुरुजी भी इन्हें देखने एकान्त में इनके पास जाया करते थे। इनका यह नियम ब्रह्मचर्याश्रम से ही चलता रहा है। धीरे-धीरे शरीर कृश होने लगा परन्तु मुख पर तेज दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। इनकी दिनचर्या को देखकर बड़े-बड़े महात्मा भी कह उठते कि 'हरिहरचैतन्य' एक दिन 'महान्–आत्मा' बनेगा। सन् १९२७ में एक दिन इसी प्रकार तपस्या से विरत होकर, वेदान्त की पूर्ण शिक्षा श्री गुरुमुख से प्राप्त करके आपके मन में घोर तपस्या का भाव आया तो गंगा तट से लौटकर आश्रम को नहीं आये और आगे को ही बढ़ते गये गंगा के किनारे किनारे। घोर जंगल में, उत्तराखण्ड की हिमाच्छादित हिमालय की तलहटियों में तरुण तपस्वी हरिहर चेतन मात्र लंगोटी लगाये कठोर साधना में लीन था। अपने शरीर की ममता त्यागकर, भूख और प्यास को हनन कर वह इन्द्रिय विजय के लिये तपस्या करने लगा। तीन वर्ष की कठोर एकान्त साधना के पश्चात् तपस्या सफल हुई। आत्मदर्शन हुआ। वहीं से इन्हें दैवी आदेश मिला कि 'इस समय तुम्हारे देश, धर्म पर आपत्ति है, संसार से भागो मत किन्तु अपने कल्याण के साथ साथ संसार का कल्याण करो; धर्म की रक्षा के लिये धर्म का प्रचार करो; अधर्म परिवर्जन के साथ-साथ प्राणियों में सद्भावना एवं विश्व कल्याण के लिये लोक में प्रवृत्त हो जाओ। वहीं से इन्होंने देश–धर्म की सेवा का व्रत लिया और यहां से आपने काशी की ओर पुनः पदाति प्रस्थान किया परन्तु काशी प्रवेश से पूर्व ही सीखर ग्राम में शिखा–सूत्र परित्यागपूर्वक विद्वत सन्यास लिया पश्चात् काशी जाकर पठन–पाठनादि में रत रहे। २३ वर्षीय युवक सन्यासी ने कठोर नियमों का पालन करते हुए पैदल यात्राएँ प्रारम्भ कीं। धीरे–धीरे इनकी त्याग तपस्या की चर्चा चहुँ ओर होने लगी।

'परमहंस' :—

सन् १९३१ में हिमालय की उपत्यका से चलकर हरिहर चैतन्य पुनः गुरूजी के समीप नरवर आश्रम में आये। सब साथियों से इन्होंने खुलकर भेंट की। सबने इन्हें 'परमहंसजी' कहकर सम्बोधित किया। उनकी उस समय बड़ी विलक्षण स्थिति थी। वे बड़े प्रसन्न दीख रहे थे, मानों कुछ मिल गया हो। मुख पर अनुपम आभा छाई हुयी थी; मस्तक तेज-पुंज से दीप्त था। उनके रोम रोम
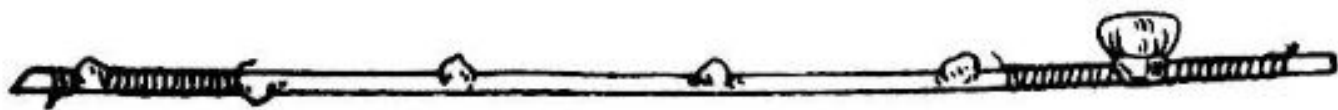
से प्रसन्नता एवं एक विशेष प्रकार की अलौकिक आभा फूट रही थी। संसार में प्राणी प्रत्येक वस्तु में अपनत्व का भान करता है। वह सांसारिक तुच्छ पदार्थों के प्रति मोह करता है, उनकी प्राप्ति पर प्रसन्न होता है। कामिनी, कांचन एवं अन्य सुन्दर सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए बड़े बड़े कठोर कर्म करता है उनकी प्राप्ति पर फूला नहीं समाता, परम प्रसन्न होता है।। जब सांसारिक अनित्य, नश्वर, क्षणभंगुर तुच्छ पदार्थों की प्राप्ति पर वह इतना प्रसन्न होता है, फिर कल्पना करो—जिसे इन सबके अधिष्ठाता, अनन्त सौन्दर्यशाली परमात्मतत्व की प्राप्ति हो गयी हो उसकी प्रसन्नता की क्या सीमा हो सकती है? यही दशा आज हमारे इस धर्म प्राण जनता के कर्णधार वीतराग युवक महात्मा की हो रही थी उनका अन्तर आनन्द रसानुभूति से सराबोर था तो वाह्य गौर सुन्दर शरीर तपस्या की अग्नि से तप्त कुन्दन की भाँति देदीप्यमान हो रहा था—वह आज अपने को वास्तव में कृतकृत्य अनुभव कर रहा था। जो भी मिला उससे खुलकर भेंट की; कोई कहता कि अब तो ब्रह्म-चारी हरिहर चैतन्यजी परमहंस हो गये। कोई इनके कन्धे पर हाथ रखकर साथियों की तरह उनसे बातें करते, अपनी कहते, उनसे कुछ पूछते। इस प्रकार बातें करते-करते वह गुरुजी के समीप गये और आगे बढ़कर गुरुदेव की पूजा की जिनकी कृपा से उन्होंने आज सब कुछ पाया था, पुष्पादि लेकर उनकी पूजा अर्चा की। फिर कुछ देर अत्यन्त भक्ति व श्रद्धा के साथ तन्मय होकर स्तुति की, उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। अनन्तर कुछ दिन गुरुचरणों में रहकर श्रीमद्‌भागवत का रसामृत पान कराते रहे। भागवत पर ही इनके प्रवचन होते रहे।

बाद में पाठशाला के गुरुजी से भी शास्त्रों के गूढ़ तत्वों को शंकालु के रूप में आपने समझा। तत्पश्चात् गुरुजी के कहने पर उनकी आज्ञा से इन्होंने न्याय-शास्त्र का अध्ययन किया। इनके एक साथी श्री शङ्करानन्दजी ने एक दिन इनसे कहा 'किस झमेले में पड़ गये हो परमहंसजी छोड़ो यह सब' और परमहंस हरिहर चैतन्य पुनः वेदान्त तत्व पर विचार करते रहे।

'करपात्री' :—

इन दिनों हरिहरचैतन्य अध्यात्मपथ पर बहुत आगे बढ़ चुके थे। उनकी विचित्र दशा थी। वह केवल एक कोपीन धारण करते थे, शौच जाने के लिये केवल मट्टी की एक हांडी पास में रखते पवित्र सदाचारी ब्राह्मणों के घर से भिक्षा मांगते और हाथ पर रखकर ही खाते। भोजन के सम्बन्ध में भी बड़े कठोर नियमों का पालन करते थे। जब किसी गांव में जाते तो शुद्धि का यहाँ तक विचार रखते थे कि पहले यह ज्ञात कर लेते कि द्विजातियों का कौनसा कूप है, अन्यथा प्यासे ही आगे बढ़ जाते और अनुकूल शुद्ध जल मिलने पर ही पर ग्रहण करते। इनके त्याग और तपस्या की ख्याति धीरे धीरे फैलने लगी। समस्त धार्मिक जगत में इनकी विचित्र प्रतिभा एवं अद्वितीय विद्वत्ता, वैराग्य एवं कठिनतम व्रतों की चर्चा सुनायी देने लगी। दूसरों को धर्म का उपदेश देने से पूर्व उन्होंने शास्त्रों की समस्त आज्ञाओं, नियमों को स्वयं अपने जीवन में उतारा। अपनी दिनचर्या में कठोर से कठोर शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए अपने आप को धार्मिक ढांचे में ढाला। अपना समस्त समय

तपस्या एवं अध्ययन में ही व्यतीत करते, भूमि पर शयन करते, पैदल भ्रमण करते—इस प्रकार इस महायोगी, परमतपस्वी, यतिराज महात्मा ने इन्द्रियदमन पूर्वक, त्याग और वैराग्य, विद्वत्ता और तपस्या से सन्यास आश्रम की सार्थकता दिखलाकर समाज को एक नयी प्रेरणा दी। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से ग्रस्त समाज में जब यह देवतुल्य महापुरुष पदाति-भ्रमण पूर्वक पधारते तो जनता धन्य-धन्य हो जाती। इस पथ भ्रष्ट समाज को त्याग, तपस्या, वैराग्य, धर्म इत्यादि की शिक्षा देने के प्रयोजन से यह परम-कारुणिक संत, दैवी प्रेरणा से प्रेरित होकर जब पधारते लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती और करों पर भोजन करने के कारण उन्हें 'करपात्री' के नाम से पुकारती। करपात्री जी महाराज की जय के तुमुल घोष के साथ उनका स्वागत करती। अब करपात्री जी की ख्याति समस्त भारत में फैलने लगी थी।

'दण्ड-ग्रहण'

करपात्री जी नरवर से पदातिभ्रमण करते हुए प्रयागराज आये तो वहां उन्होंने पुनः परम तपस्वी सन्यासी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के दर्शन किये जिनकी प्रेरणा एवं आज्ञा से लगभग सात वर्ष पूर्व 'हरनारायण' विद्याध्ययन करने के लिये नरवर गया था। आज उसे 'हरिहर-चैतन्य' और 'परमहंस' बने करपात्री के रूप से देखकर वह बड़े प्रसन्न हुए। उनके पास बड़े-बड़े महात्मा आया करते थे। इन सबका सम्पर्क करपात्री जी से हुआ तो वे इनकी अद्‌भुत विद्वत्ता, अपूर्व त्याग और घोर तपस्या को देखकर बड़े प्रभावित हुए उन पर इनके व्यक्तित्व की गहरी छाप पड़ी। २४ वर्षीय तरुण तपस्वी सन्यासी 'करपात्री' में विद्यार्थियों जैसी जिज्ञासा एवं ज्ञान पिपासा थी। उन्होंने वहां भी गुरुजनों से अध्ययन किया, बहुतों से कुछ सीखा तथा अनेकों को पढ़ाया।

प्रयाग से अब वह धार्मिक जगत की राजधानी, भूतभावन, विश्वनाथ, भगवान शङ्कर की नगरी 'काशी' पधारे तो लोगों ने देखा कि एक गौरवर्ण पर लंगोटी लगाये, एक छोटा सा गैरिक वस्त्र धारण किये, उन्नतललाट पर त्रिपुण्ड धारण किये, हाथ में मिट्टी की हाँडी लिये एक तरुण गंगा किनारे किनारे बढ़ा चला आ रहा था मानो, ज्ञान वैराग्य की कोई मूर्ति चली आ रही हो। ख्याति तो कई वर्षों से फैल ही रही थी, दर्शनों के लिये भीड़ उमड़ पड़ी। वहां अनेक विद्वान एवं महात्माओं के सम्पर्क में आये। काशी के एक प्रसिद्ध सन्यासी दण्डी स्वामी श्री अनन्ताश्रम जी एक बड़े ही उच्च-कोटि के विद्वान महात्मा थे। उनके सर्वश्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ शिष्य श्री स्वामी कमलनाभ आश्रम जी भी उन्हीं की भांति बड़े उद्‌भट विद्वान थे। दण्डी स्वामी के अतिरिक्त तो वह किसी अन्य सन्यासी तक को महत्त्व एवं बढ़ावा नहीं देते थे। वह भी इनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिता पर मुग्ध हो गये और कहते हैं कि उन्होंने भी आकर करपात्री जी से कुछ अध्ययन किया। काशी के अन्य विद्वानों एवं महात्माओं ने भी स्वामी करपात्री जी से विद्या ग्रहण की। वहाँ के मूर्धन्य पण्डित समाज पर करपात्री जी की विद्वत्ता का प्रभाव पड़ने लगा। और फल यह हुआ कि देश भर के विद्वानों में स्वामी करपात्री जी का नाम अग्रगण्य हो गया। जब बड़े बड़े ख्यातिलब्ध महात्मा दण्डी सन्यासी भी इनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर स्वामी जी से विद्याध्ययन करने लगे

जो इनके दण्डी न होने के कारण इन्हें उच्चासन देने में संकोच का अनुभव करते। अतः उन्होंने करपात्री जी से प्रार्थना की कि दण्डी सन्यासियों के लिये ही आचार्य होने का विधान है अतः आप दण्ड अवश्य ग्रहण कर लें।

उधर जब स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने देखा कि शिष्य की ख्याति बढ़ गयी है परन्तु अभी तक उसने दण्ड ग्रहण नहीं किया है जो कि आवश्यक है और फिर उन्होंने यह भी अनुभव किया कि दण्ड ग्रहण करने के कारण सन्यासियों में जो गौरव उन्हें मिलना चाहिये वह नहीं मिल रहा है। अतः उन्होंने करपात्री जी से दण्ड ग्रहण करने के लिये कहा परन्तु स्वामी जी ने इसे विनम्रता पूर्वक मना कर दिया। कुछ ऐसी अद्भुत अवस्था थी उनकी कि वह अपने पास कुछ भी रखना नहीं चाहते थे इसे एक बन्धन मानते थे। अनन्तर इनके विद्यागुरु पूज्यस्वामी विश्वेश्वराश्रमजी महाराज के विशेष आग्रह एवं आज्ञा पर करपात्री जी ने इस शर्त पर दण्ड ग्रहण स्वीकार कर लिया कि वह अनिवार्य रूप से स्वयं दण्ड लेकर नहीं चलेगा। अपितु कोई शिष्य उनके साथ रहेगा वही दण्ड लेकर चलेगा। इनके गुरुदेव ने एक दिन करपात्री जी से कहा कि 'आज दण्डी सन्यासियों में विद्वान महात्माओं की कमी होती जा रही है, अतः तुम जैसे अनुपम विद्वानों एवं त्यागी तपस्वी सन्यासी को दण्ड ग्रहण कर एक आदर्श स्थापित करना चाहिए।'

इस प्रकार आपने परमगुरुदेव षड्दर्शनाचार्य श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज की आज्ञा से, परम वीतराग श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य १००८ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज के कर कमलों द्वारा सन् १६३१-३२ में लगभग २४ वर्ष की आयु में काशी में दुर्गाकुण्ड के निकट बड़हर के महाराज की कोठी की उपत्यका में भगवान शंकर के मन्दिर के पार्श्व में आपने विधिवत् दण्ड ग्रहण किया। धार्मिक जगत् 'करपात्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती की जय' के निनाद से गूंज उठा। उसने एक 'अभिनव शङ्कराचार्य' के रूप में आपके दर्शन किये।

धर्मप्राण भारत के लिये कितना महान् दिवस था वह !

दण्डग्रहण के पश्चात्

धर्मसंघ :

दण्डग्रहण के पश्चात् स्वामी जी सन्यासी के लिये मान्य कठिन नियमों का पालन करते हुए काशी से ऋषिकेश तक गंगातट पर आत्म-चिन्तन में ही निरत रहने लगे। किन्तु परमात्मा को तो इनसे कुछ और ही कार्य लेना था, फलतः इनके मन में लोक कल्याण की आत्मप्रेरणा जागृत हुई, दैवी आदेश प्राप्त हुआ। शताब्दियों से पददलित इस देश की सनातन संस्कृति, जाति एवं धर्म की दुर्दशा इस धर्मप्राण भारत में उनसे नहीं देखी गयी। एक ओर तो भयंकर विश्वयुद्ध की ज्वालाओं में जलभुनकर समस्त विश्व की मानवता भस्मसात हुआ चाहती थी। दूसरी ओर जगद्‌गुरु भारत भी युद्ध की लपटों से सन्तप्त था। धर्म प्राण भारत असंख्यों अज, दिलीप, मान्धाता, रघु, राम, कृष्ण, प्रताप एवं शिवा की सन्तानों के होते हुए भी परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। प्रयत्नशील होते हुए भी यथेष्ट सफलता नहीं मिल रही थी। सम्पूर्ण देश आधि-व्याधि, शोक, मोह, रोग, हीनता दीनता, दरिद्रता एवं परतन्त्रता के भयंकर बन्धनों में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। स्वतन्त्रता के लिये प्रयास तो हो रहे थे परन्तु उनमें सफलता मिल जाने पर स्थायी सुख–शान्ति की आशा नहीं थी; क्योंकि कूटनीतिज्ञ विदेशियों के रंग में रंगकर हमारे ही कुछ पाश्चात्य-शिक्षा-दीक्षित भाई, सुधार के नाम पर, उस धर्म के ही विनाश में ही सुख-शान्ति देखने लगे थे, जिसे अनादि काल से मिटाने के प्रयत्न होते रहे हैं। परन्तु उसे मिटाने वाले स्वयं मिट गये। देश में सुबुद्धि के नाम से ऐसी दुर्बुद्धि फैली हुई थी कि लोग कुपथ्य को ही पथ्य समझ रहे थे, सहोदर जान सर्प को ही गले लगा रहे थे। देश में धार्मिक भावनाओं की कमी के कारण एकता तथा संगठन के नाम पर, मुसलिम-नान मुसलिम, ब्राह्मण-अब्राह्मण, छूत–अछूत, मिलमालिक–मजदूर, स्त्री–पुरुष, पिता-पुत्र, किसान, जमींदार, समाजवाद–धर्म, पाकिस्तान–हिन्दुस्तान आदि अनेकों समस्याएँ उत्पन्न हो रही थीं। परस्पर वाद-विवाद बढ़ रहे थे, जितना सुलझाने का प्रयत्न किया जाता वह उतनी ही उलझ जाती थीं। सुधार के नाम पर अधार्मिक बिल पास करने की धुन सवार थी; लोग विकासवाद के नाम पर अपने पूर्वजों को मूर्ख और जंगली बताते हुए उनका स्वागत गालियों तक से करने में भी नहीं हिचकते थे। सारांश ! आध्यात्मिक भारत की आत्मा रो रही थी।

स्वामीजी ने विचार किया कि भारत की उपर्युक्त दशा तथा पतन का कारण क्या है ? उन्नति, सुख, शान्ति, स्वतन्त्रता इत्यादि सुख–प्राप्ति के साधन क्या हैं ? उन्होंने देखा कि लोग इनकी प्राप्ति के मूल सिद्धान्त से दूर हट गये थे। सर्व अनर्थों के मूलभूत अधर्म में प्रवृत्ति तथा धर्म
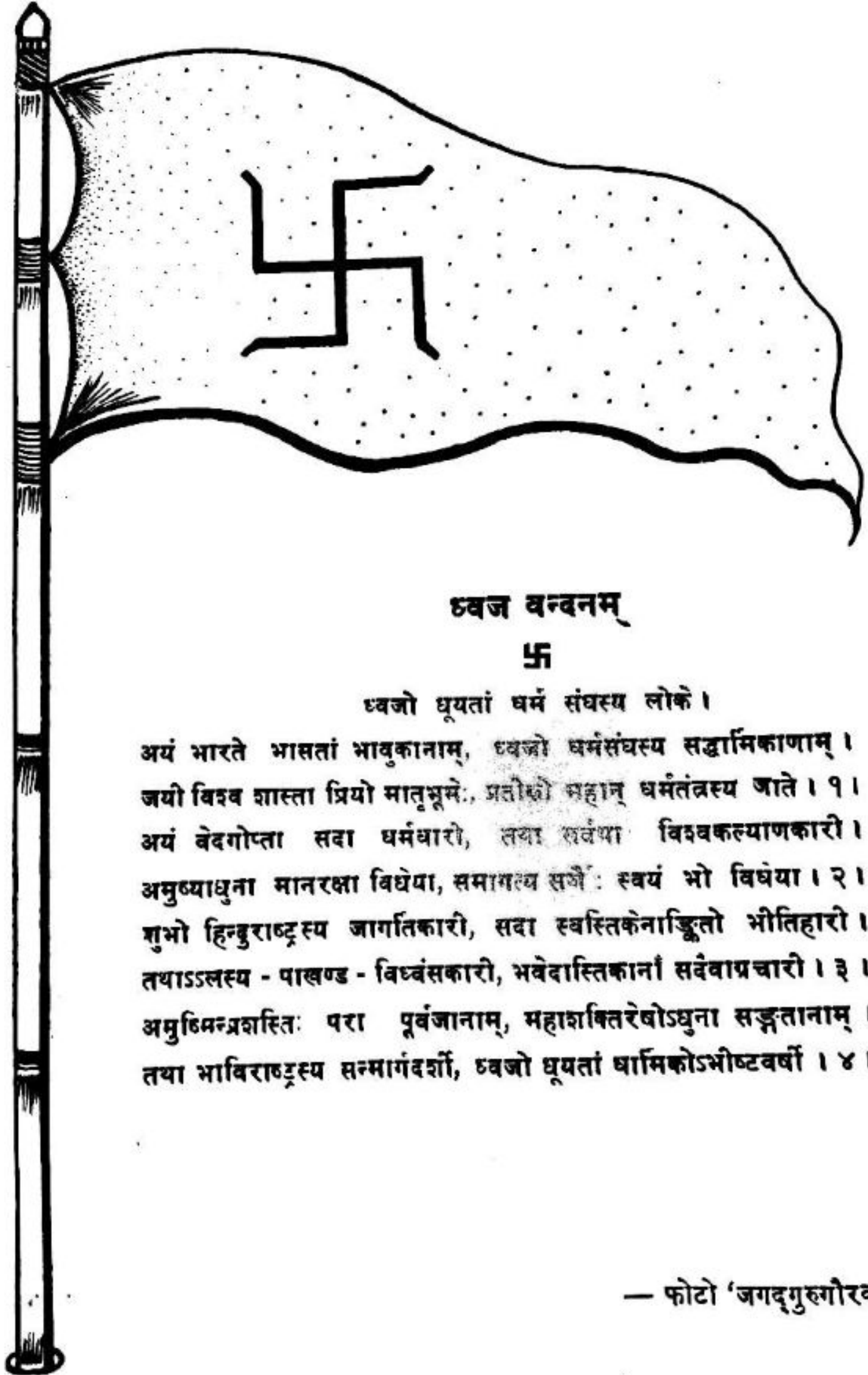
ध्वज वन्दनम्

卐

ध्वजो धूयतां धर्म संघस्य लोके।

अयं भारते भासतां भावुकानाम्, ध्वजो धर्मसंघस्य सद्धार्मिकाणाम्।
जयी विश्व शास्ता प्रियो मातृभूमेः, प्रतीको महान् धर्मतंत्रस्य जाते।१।
अयं वेदगोप्ता सदा धर्मधारी, तथा सर्वथा विश्वकल्याणकारी।
अमुष्याधुना मानरक्षा विधेया, समागत्य सर्वैः स्वयं भो विधेया।२।
शुभो हिन्दुराष्ट्रस्य जागतिकारी, सदा स्वस्तिकेनाङ्कितो भीतिहारी।
तथाऽऽलस्य - पाखण्ड - विध्वंसकारी, भवेदास्तिकानां सदैवाप्रचारी।३।
अमुष्मिन्प्रशस्तिः परा पूर्वजानाम्, महाशक्तिरेषोऽधुना सङ्गतानाम्।
तथा भाविराष्ट्रस्य सन्मार्गदर्शी, ध्वजो धूयतां धार्मिकोऽभीष्टवर्षी।४।

— फोटो 'जगद्गुरुगौरव'

विरोधी भावना को मिटाने के लिये और सब प्रकार की उन्नति, कल्याण एवं सुख के मूल कारण 'धर्म की स्थापना' के लिये किसी की रूचि नहीं थी। स्वामीजी ने कहा कि 'धर्म और भगवान् के अभिमुख होना ही लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण का मूल है, परन्तु भारत आज इस शास्त्रीययोजना को अपनाने में लजाता है, इसकी अवहेलना करता है' —'आज एक स्वर से सभी भारतीयों को परमात्मा से पुकार करनी चाहिये, कुछ जप, पाठ, पूजन प्रार्थना करनी चाहिये और यह भावना सुदृढ़ बनानी चाहिये कि सम्पूर्ण जगत् एक प्रभु का ही रूप है, जगत् का सब कुछ परमेश्वर का ही अंश है, वही अकारण करूण-करूणावरूणालय हैं, उन्हीं की शरण जाने में कल्याण हो सकता है।···अनन्त शक्ति, अनन्त सत्ता, अनन्त सुख, अखण्ड शान्ति एवं अपरिमित स्वातन्त्र्य के मूल सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, परब्रह्म, परमात्मा से तारतम्य स्थापित करने से उसे करूण होकर पुकारने से अभीष्ट की प्राप्ति हो सकेगी।'

अत: 'धर्म–ग्लानि, अधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति और धर्म संस्थापन हो' इस शुद्ध संकल्प से प्रभु प्रार्थना की जाने का कार्यक्रम इन्हीं महापुरुष की प्रेरणा से बनाया और लगभग दो वर्षों तक लिखलिखकर ही यह सिद्धान्त नगर नगर और ग्राम ग्राम में बाँटा जाता रहा।

संवत् १९९४ वि० (सन् १९३७ ई०) में हरिद्वार महाकुम्भ के अवसर पर इस सिद्धान्त का व्यापक प्रचार हुआ। स्वामी करपात्री जी मेले से कई मील दूरी पर एक झोंपड़ी बनाकर ठहरे थे तथा रोड़ी वाला क्षेत्र में स्वामी रामदेवजी, श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज प्रभृति बड़े-बड़े सन्त भी वहीं ठहरे थे। वहीं आप नित्य प्रवचन करते रहे। स्वामीजी नित्य दश-दश घण्टे तक प्रवचन करते थे और फिर भी दश-दश हजार की भीड़ हर समय उपस्थित रहती थी इनके भाषण के सुनने के लिये। उसी मेले में वर्णाश्रम-स्वराज्य संघ का भी अधिवेशन था। वहाँ सायंकाल महामहो–पाध्याय पं॰ गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी के भी भाषण होते थे। उनसे जब दिन में भी भाषण देने की प्रार्थना की गयी तो बोले कि 'दिन में हमारे पढ़ने की एक पाठशाला खुली है, यदि वहाँ पढ़ने नहीं जायेंगे, तो यहाँ सायंकाल को क्या भाषण करेंगे ?' भारत के उस महाविद्वान के मुख से उक्त वचन सुनकर सब अवाक् रह गये कि कौन-सी पाठशाला है वह ? कौन से महापुरुष वहाँ पढ़ाते हैं, जिनसे ऐसे-ऐसे विद्वान भी पढ़ने की जिज्ञासा रखते हैं ? तो उस महान् दार्शनिक वेदज्ञ ने बताया कि 'पूज्य-पाद श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के, अजस्रगंगा की धारा के समान दिन भर, धर्मोपदेशों की धारा प्रवाहित होती रहती है, वही हमारी पाठशाला है। सारांश ! भारत के बड़े-बड़े विद्वान भी इस प्रकार स्वामी जी के सम्पर्क में आये और स्वामीजी की धर्म प्रचार योजना को बल मिला। अन्त में स्वामी जी ने इस संकल्प से जप, पाठ अनुष्ठानादि करने वाले आस्तिकों का एक संघ स्थापित किया, उन्हें संघटित करने का प्रयत्न किया तथा कई वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् संवत् १९९७ विक्रमी (सन् १९४०) की विजयादशमी के पवित्र दिवस को 'धर्मसंघ' की स्थापना हुयी।

'प्रचार' :

'धर्मसंघ' के पावन संकल्प के व्यापक प्रचार के लिये तथा धर्मसंघ के संघटन को सुदृढ़ बनाने के लिये स्वामी जी ने धर्मयात्राए प्रारम्भ कीं। हरिद्वार से गंगासागर तक और वहां से पुष्कर-राज तक उन्होंने पैदल यात्रा की। नगर-नगर ग्राम-ग्राम में जाकर स्वामी जी ने सनातनी वैदिक धर्म का सन्देश सुनाया, जन-सम्पर्क स्थापित कर सुप्त धार्मिक समाज में जागृति उत्पन्न की तथा 'धर्मसंघ' की शाखाए स्थापित कीं। उनकी विलक्षण प्रतिभा, अद्वितीय भाषणशैली, अनुपम त्याग एवं तपस्या के कारण अल्पकाल में ही सम्पूर्ण भारतवर्ष में सैकड़ों शाखाएँ धर्म की जय हो एवं अधर्म का नाश हो' 'प्राणियों में सद्भावना हो एवं विश्व का कल्याण हो' 'धर्म-संघ के इन पावन उद्घोषों के साथ धर्म ग्लानि-अधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति पूर्वक, धर्म संस्थापन की विशुद्ध भावना से सैकड़ों धार्मिक अनुष्ठानों में रत हो गयी। देश में एक छोर से दूसरे छोर तक टोले-टोले, मुहल्ले-मुहल्ले, ग्राम-ग्राम में जप, पाठ, पूजा, प्रार्थनाएँ एवं अनुष्ठानादि का ताँता लग गया। इन सबका एक ही उद्देश्य था, एक ही लक्ष्य था—विश्व का कल्याण।

स्वामी जी ने अब अमरनाथ की पैदल यात्रा की। समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश जम्मू-काश्मीर, पंजाब आदि में धर्मसंघ की शाखाएँ स्थापित कीं। संघ के व्यापक-उदार सिद्धान्त का प्रचार किया। जहाँ भी यह तरुण-सन्यासी एक हाथ में दण्ड धारण किये पदाति भ्रमण करते-करते पहुँचते लोग धर्म की जय जयकार के साथ इनका स्वागत करते। स्वामी जी के उपदेशों का सार था 'सब एक ही परमात्मा की सन्तान हैं। सब कुछ परमात्मा का ही अंश है। तुम अपने को हीन मत समझो। अनुभव करो और समझो कि तुम तो अमृत के पुत्र हो ? 'अमृतस्यपुत्रा:' एक पिता की सन्तान के नाते विश्वबन्धुत्व एवं विश्व कल्याण की विशुद्ध परमोदार भावना का प्रचार करो घर-घर में। जगद्गुरूभारत के 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' के सिद्धान्त को समझो और उसके अनुसार ही जीवन में आचरण करो····इत्यादि···।' धर्म के इन व्यापक सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए भारत के इस छोर से उस छोर तक इस तरुण-तपस्वी-मनस्वी-वीतराग सन्यासी ने न जाने कितनी धर्म यात्राएँ कीं।

मार्गशीर्ष विक्रम संवत् १९९५ (सन् १९३८ ई०) में इनके पूज्यपाद विद्यागुरू श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज का महानिर्वाण हुआ। इस अवसर पर एक विशेष आयोजन हुआ। पूज्य १००८ श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज, श्री उड़िया बाबा जी महाराज इत्यादि अनेक सिद्ध महात्मा एकत्रित हुए। स्वामी जी ने भी इस अपूर्व धर्मसत्र में भाग लिया। कई दिनों तक सत्संग चलता रहा। श्री उड़िया बाबा जी सामूहिक रूप से प्रणव सहित संकीर्तन कराते थे, करपात्री जी ने इसका विरोध किया और इसी विषय पर कई दिन तक भाषण दिये। और बाद में 'संकीर्तन-मीमांसा और वर्णाश्रम मर्यादा' के नाम से एक परम प्रामाणिक पुस्तक भी लिखी। गीता प्रेस गोरख-पुर द्वारा भगवान् आद्य श्री शङ्कराचार्य जी के भाष्य के सम्बन्ध में कुछ भूलें कल्याण में प्रकाशित हो गयीं। स्वामी जी तुरन्त वहाँ पहुँचे। उन्हें समझाया। कल्याण सम्पादकों ने भूल स्वीकार की परन्तु संशोधन प्रकाशित करने में संकोच प्रदर्शित करने लगे। स्वामी जी ने तुरन्त "शाङ्कर-सिद्धान्तों पर

किये गये आक्षेपों का 'समाधान' नाम से एक अत्यन्त प्रामाणिक एवं पांडित्यपूर्ण पुस्तक की रचना की। यही नहीं स्वामी जी ने जहाँ कहीं भी धर्म-मर्यादा का अतिक्रमण होते हुए देखा वहीं निर्भयता पूर्वक आवाज उठायी और इस प्रकार सदैव ही विरोधियों की शंकाओं का समाधान करते हुए अबाध-गति से अहर्निश सारे देश में पैदल घूम-घूमकर धर्मयात्रा करते हुए धर्म का प्रचार करते रहे और इस असंगठित सुप्त सनातनी समाज को एक सुदृढ़ प्लेटफार्म तय्यार कर दिया।

प्लेटफार्म के साथ ही साथ स्वामी जी प्रेस की शक्ति से भी अपरिचित नहीं थे। उन्होंने काशी से पहले संवत् १९९६ विक्रम के कार्त्तिक मास में मासिक 'सन्मार्ग' का प्रकाशन प्रारम्भ कराया और फिर साप्ताहिक 'सिद्धान्त' का। सिद्धान्त केवल विचार पत्र ही था। अतः शीघ्र ही समाचार प्रधान साप्ताहिक 'सन्मार्ग' का प्रकाशन भी काशी से ही स्वामी जी ने प्रारम्भ किया। इन सभी पत्रों में स्वामी जी नियमित रूप से अपने विचार प्रकट करते रहे और उस समय की भूली जनता को सचमुच ही 'सन्मार्ग' के द्वारा आवश्यक मार्गदर्शन मिलता था। इन्हीं दिनों उपर्युक्त संकीर्तनमीमांसा एवं 'समाधान' नामक दो पुस्तकों के अतिरिक्त 'श्री भगवत्तत्त्व' ग्रन्थ की रचना की जिसको पढ़कर स्वामी जी की अगाधभक्ति, प्रकाण्ड-पांडित्य तथा शास्त्रों के अपरिमित ज्ञान का अच्छा परिचय विद्वानों को प्राप्त हुआ।

विक्रमी संवत् १९९८ के माघमास में, प्रयाग-कुम्भ के अवसर पर धर्मसंघ की ओर से धर्म-प्रचार के लिये एक विशाल कैम्प की आयोजना की गयी थी, वहीं धर्म संघ को अखिल भारतीय रूप दिया गया। अ० भा० धर्म संघ का विशेषाधिवेशन हुआ जिसमें संघ के उद्देश्य, नियम, आदि बनाये गये। पदाधिकारियों का निर्वाचन किया गया, प्रान्तीय समितियाँ बनायी गयीं तथा आगे का कार्यक्रम भी निर्धारित किया गया। उस दिन से आज तक स्वामी जी की अमर स्मृति 'धर्म-संघ' धार्मिक जनता का पथ-निर्देशन कर रहा है। धर्मसंघ ने सच्चे अर्थों में सुप्त धार्मिक समाज को एक नवीन चेतना प्रदान की है और धर्मसंघ के माध्यम से किये गये धर्मप्रचार का पराधीन भारत की तत्कालीन जनता के हृदयपटल पर जो व्यापक प्रभाव पड़ा उसका आकलन भी आज कठिन है।

अनन्यसहयोगी :—

धर्म संघ ने अखिल भारतीय रूप ग्रहण किया तो उसका कार्यक्रम एवं प्रचार भी बढ़ा। महामहोपाध्याय श्री पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री प्रभृति अनेकों विद्वानों का पूर्ण सहयोग पूज्य स्वामी जी को प्राप्त हुआ। किन्तु धर्म प्रचार के उनके कार्य में जो उन्हें अनन्य सहयोगी के रूप में प्राप्त हुए, वह थे पूज्यपाद श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज, जिनका मिलन तो यद्यपि सन् १९३० ई० में मेरठ जनपद के गाधि नामक ग्राम की अमरायी में हुआ था। इन वीतराग, ब्रह्मनिष्ठ, तपोमूर्ति महात्मा को धर्म-संघ ने अपना स्थायी सभापति निर्वाचित किया। साक्षात् धर्मस्वरूप स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज का पूर्ण सक्रिय सहयोग प्राप्त होते ही धर्म-संघ को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। दोनों की पैदल धर्मयात्राएँ, धर्म प्रचार एवं धर्म-संघ के सिद्धान्तों के प्रसार हेतु आसेतुहिमाचल प्रारम्भ हुयीं। तब से ये दोनों—श्री स्वामी करपात्री जी

महाराज एवं श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज—एक प्राण दो देह की भाँति धर्म-संघ द्वारा
धर्म की सेवा में संलग्न रहे। यदि सच पूछा जाय तो आप दोनों महात्माओं की धर्म के प्रति लगन,
त्याग एवं तपस्या के कारण ही धर्मसंघ को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुयी। दोनों में परस्पर इतना
प्रेम, सौहार्द एवं आत्मीयता थी कि लोग सहसा कह उठते थे कि 'इनका अद्भुतनेह एक प्राण दो देह'।
स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी प्रायः सभी कार्यों की सम्पन्नता का श्रेय स्वामी श्री करपात्री जी को
देते तो श्री स्वामी करपात्री जी उनके तप त्याग को ही सफलता का कारण बताते। स्वामी श्री
करपात्री जी उन्हें बड़ा उच्च कोटि का महात्मा बताते तो स्वामी जी कहा करते कि करपात्री जी
महाराज बड़े महात्मा हैं। यह सत्युगी महात्मा हैं इनके मन में इस कलिकाल में भी सत्युगी संकल्प
उठा करते हैं—लोग इनकी इस निरभिमानता को देखकर गद्गद् हो जाते।

यज्ञयुग की झलक :—

धर्म संघ की शाखा सभाओं में वृद्धि हुयी तो धर्मसंघ के पावन संकल्प से होने वाले धार्मिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों की भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक धूम मच गयी। इनमें सर्व प्रथम सोनीपत में रुद्रमहायाग हुआ, फिर गढ़मुक्तेश्वर में तत्पश्चात् मेरठ नगर में दो 'सहस्रचण्डीयज्ञ' सम्पन्न हुए। फिर राजधानी दिल्ली में 'शतमुखकोटिहोमात्मक महायज्ञ' तथा कानपुर में इसीकी पुनरावृत्ति हुयी। पश्चात् काशी का 'सार्द्धद्वय कोटिहोमात्मक एकविंशत्युत्तरशतमुख सर्ववैदिक शास्त्रीय रुद्रमहायज्ञ' सम्पन्न हुआ। लखनऊ, उदयपुर, बम्बई में 'लक्षचण्डीमहायज्ञों' का अनुष्ठान हुआ, बीकानेर की अयुतचण्डी के अतिरिक्त देश के प्रमुख नगरों में अनेक महान यज्ञों के आयोजन, विश्व-कल्याण की कामना से इन्हीं महात्मा की प्रेरणा एवं धर्मसंघ के तत्वावधान में किये गये। विस्तार भय से इनका विशद विवरण एवं चित्रावलियाँ देना उचित नहीं है।

देहली का यज्ञ तो भारत की एक ऐतिहासिक घटना ही बन गया। इस यज्ञ के साथ ही सनातन धर्म के प्रचार का भी जितना महान् आयोजन किया गया था, सम्भवतः वैसा उससे पहले कभी सम्पन्न नहीं हुआ। इस यज्ञ में लगभग दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया। उस समय प्रकाशित होने वाले देश विदेश के समाचार पत्रों ने यज्ञ सम्बन्धी विवरण को प्रमुख स्थान देकर प्रकाशित किया। स्वामी जी ने धार्मिक भारत की वर्तमान (तत्कालीन) धार्मिकता को तोला था। उसका मूल्यांकन किया था। वेदों की ११३१ शाखाओं में से केवल न्यूनाधिक्य २०–२१ ही उस समय उपलब्ध थीं। स्वामी जी ने इन सभी प्राप्त शाखाओं के विद्वानों को देहली निमन्त्रित किया, उनसे विचार-विमर्श किया और इस प्रकार चिरप्रसुप्त सनातन-वैदिक-संस्कृति को नवचेतना देने का महान् कार्य सम्पन्न किया।

देश में, इस घोर कलिकाल में यज्ञयुग की झलक दिखाने का श्रेय इन्हीं पूज्यमहात्मा को है, जिन्होंने अपनी तपस्या एवं सत्प्रयत्नों के द्वारा भगवान के भरोसे पर ही लाखों रुपयों की लागत से सम्पन्न होने वाले ऐसे ऐसे महान् ऐतिहासिक यज्ञों का अनुष्ठान कर दिखाया, जो कभी सत्युग में ही सम्भव थे। विशेषता यह रही कि इन समस्त यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के मूल में किसी का किसी

देव कोई मुड़ गया होगा पथ भूल कर,
भूमि पर नभ से विभूति चली आई है।

मन्त्र से पवित्र तुम तन्त्र से विचित्र तुम,
खेले जिस अंक बीच धन्य वह माई है॥

कौनसा विशेषण हो, उपमा कहां मिले,
कुछ भी न सूझ रहा भूली कविताई है।

माई बस माई है, पवित्रता में कोख वह,
वेद को ऋचा है, तुलसी की चौपाई है।

आशीः

धर्म की जय हो

अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो

विश्व का कल्याण हो

हर हर महादेव

[illegible]

[illegible]

प्रकार का स्वार्थ निहित नहीं था, अपितु यह सभी अनुष्ठान 'धर्म की जय', 'अधर्म का नाश', 'प्राणियों में सद्भावना' एवं 'विश्व के कल्याण' के धर्म-संघ के परमोदार शुद्ध संकल्पानुसार ही सम्पन्न हुए थे। इस कार्य के लिये किसी को दबाकर अथवा प्रभावित करके एक भी पैसा नहीं लिया गया वरन् अपनी कमायी को पवित्र बनाने के लिये जनता ने स्वयं यज्ञस्थल पर आ आकर लाखों रुपया यज्ञ-भगवान की सेवा में समर्पित किया। कई यज्ञों में तो लाखों रुपये व्यय होकर भी लाखों रुपया बच रहा। देहली में इसी बचे हुए धन से निगम बोध घाट पर श्री धर्म-संघ महाविद्यालय की स्थापना हुयी और उसी धन से आज भी उसका संचालन हो रहा है।

पूज्य स्वामी जी ने कैलाश से कन्याकुमारी तक एवं अमरनाथ से गंगासागर तक सम्पूर्ण अखण्ड भारत में इन महायज्ञानुष्ठानों द्वारा सनातन वैदिक संस्कृति एवं धर्म का शंखनाद फूंककर प्रसुप्त धार्मिक जगत् में वह जन जागरण एवं स्फूर्ति उत्पन्न कर दी जिसकी बड़ी आवश्यकता थी।

—●●—

प्रचार के आधार

"धर्मविरोधीबिल"

पूज्य स्वामी जी महाराज अपने सहयोगियों के साथ भारत की जनता में व्यापक रूप से फैली धर्म के प्रति उपेक्षा को नष्ट करने उसे अकर्मण्यता एवं उदासीनता के गर्त में से निकालकर समाज में क्रियात्मक रूप से भाग लेने की ओर प्रेरित करने में जुटे हुए थे कि तत्कालीन विदेशी भारत सरकार ने अपनी नीति के अनुसार ही हिन्दुओं से छेड़छाड़ करने के उद्देश्य से 'हिन्दू लॉ कमेटी' के नाम से एक समिति का गठन किया। इस समिति को ऐसे कानून बनाने का कार्य सौंपा गया जो हिन्दू धर्मशास्त्रों को अस्त-व्यस्त करके, अंग्रेजी भाषा में, अंग्रेजियत से प्रभावित हों और ब्रिटिश भारत में रहने वाले समस्त हिन्दुओं पर ही लागू हों। इस समिति ने मुख्य रूप से दो बिलों का मसौदा बनाया। एक 'अप्रदत्तउत्तराधिकार बिल' और दूसरा 'हिन्दू–विवाह तथा तलाक बिल'। स्वामी जी ने दोनों बिलों का अध्ययन किया और देखा कि उनका उद्देश्य केवल भारत की धार्मिक जनता की भावनाओं से खिलवाड़ मात्र ही है। उन्होंने कहा कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय किसी भी सरकार को अथवा देशी राज्यों को कभी भी ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं कि वह ऐसे कानून बना सके जो कि हिन्दुओं के निजी व्यवहार, धार्मिक संस्कार और धर्मशास्त्रों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन कर सकें। धार्मिक स्वातन्त्र्य की महारानी विक्टोरिया द्वारा की गयी सन् १८५७ ई० की घोषणा की भी जब सरकार उपेक्षा करने पर उतारू हो गयी, तब स्वामीजी से नहीं रहा गया। इन्होंने धर्म प्रचार के अपने कार्यक्रम के साथ-साथ अधार्मिक बिलों का विरोध भी अपने कार्यक्रम का मुख्य अंग बनाया। उन्होंने इन धर्मनाशक बिलों का भण्डाफोड़ करते हुए स्पष्ट घोषणाएँ कीं कि कुछ सुधारकों ने, जो कि सर्वथा भारतीयता से अनभिज्ञ हैं, सरकार के सामने सुझाव पेश किये हैं, जिनमें सुधार के नाम पर इस प्रकार के बिल पास करने को कहा गया है। परन्तु सरकार को ऐसा अधिकार नहीं है; प्रत्येक भारतीय को इन बिलों का विरोध करना चाहिये। ब्रिटिश सरकार जो हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं धर्म को मिटाने की ताक में रहती है उसी ने हमारे धर्म पर घातक प्रहार करने के लिये यह 'राव कमेटी बनाई है। जिसने धर्म-शास्त्रों के नाशक उपर्युक्त बिल ऐसेम्बली में प्रस्तुत किये हैं। इस 'राव कमेटी' में कोई भी धर्म शास्त्र का विद्वान नहीं हैं और न ही वैदिक संस्कृति का प्रेमी ही बल्कि 'राव' साहिब स्वयं ईसाई मतावलम्बी हैं—ऐसी परिस्थिति में इन बिलों से हिन्दू धर्म का नाश ही प्रत्यक्ष है। उक्त कमेटी ने जो उत्तराधिकार सम्बन्धी बिल प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार कुटुम्ब सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, भाई-बहिन में कलह होगा, परस्पर प्रेम-भाव नष्ट हो जायगा, घर

अपने लिये रोना या हंसना तो सभी को आता है, किन्तु विश्व के हंसने में हंसना और रोने में रोना तो महापुरुषों का ही काम है। एक माला का भी जाप शुद्ध मन से, सच्ची भावना से जो विश्व-कल्याण की कामना से करता है वह धन्यवादार्ह है, वह जप चाहे शिव, विष्णु, शक्ति या किसी भी अन्य अपने ईष्टदेव के मन्त्र या नाम का हो। बस उसके मूल में जो भावना हो वह विशुद्ध लोक कल्याणार्थ ही हो। और फिर करुण होकर प्रभु से मनायें कि प्रभु किसी एक व्यक्ति, जाति, समाज, या राष्ट्र को नहीं वरन् 'धर्म की जय हो' किसी संस्था, जाति, सम्प्रदाय का नहीं 'अधर्म का नाश हो', पारस्परिक वैमनस्य दूर होकर 'प्राणि मात्र में सद्भावना हो', और इस प्रकार किसी एक का ही नहीं अपितु, 'समग्र-विश्व का कल्याण हो'। सनातन धर्म के अतिरिक्त ऐसी उदात्तभावना कहीं अन्यत्र मिलती है? अतः इष्टदेव के चरणों में नित्य मनाया करो कि—

सर्वेपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ।।
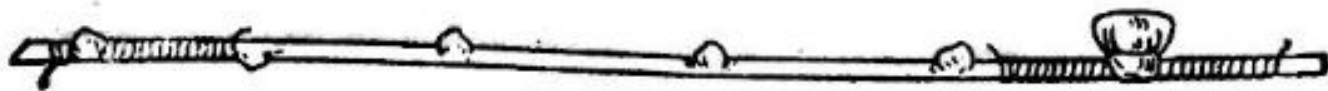
की सम्पत्ति घर में ही रहे ऐसा विचार कर मुसलमानों की भांति घर में ही विवाह होने लगेंगे अथवा बहनों के विवाह शीघ्र नहीं होंगे। ऋण छोड़कर मरने वाले पिता की पुत्री से कोई विवाह न करेगा। दहेज के भय से लोग पुत्रियों एवं बहिनों का वध तक करने से न चूकेंगे। सास, श्वसुर द्वारा पुत्र के दूसरे विवाह न करने के लिए धन प्राप्ति के लालच में प्रथम बहू का वध तक करने की समाज में नौबत आ सकती है।" सारांश ! इसी प्रकार की अनेकों बुराइयाँ, जो कि सर्व साधारण की बुद्धि के बाहर की हैं, उन्हें स्वामी जी ने खुले रूप से जनता के समक्ष, बिल के विरोध में रखा। 'विवाह बिल' के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बुराईयों से जनता को अवगत कराया उन्होंने खुले मंचों से घोषणा की कि 'इस प्रकार के बिलों से लाभ के बदले कलह तथा उच्छृं-खलता को ही प्रोत्साहन मिलेगा। सबसे बड़ा अनर्थ यह होगा कि इन बिलों के बन जाने पर धर्म-शास्त्र बाधित होंगे अथवा वे मन्सूख समझे जायेंगे।

स्वामी जी ने धर्म प्रचार के साथ-साथ इन बिलों के विरोध का कार्य भी अपने हाथ में ले लिया और इनके विरोध में पुनः देशव्यापी दौरे किये। देश के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में इन बिलों के विरोध में प्रबल जनमत जागृत हो उठा। लाखों तार, पत्र, हस्ताक्षर कराके सरकार को भिजवाये। जिसके परिणाम स्वरूप 'राव कमेटी' की रिपोर्ट के ही अनुसार अस्सी प्रतिशत व्यक्ति इन बिलों के विरोध में पाये गये। जहाँ जहाँ भी कमेटी गयी उसे जनता के प्रचण्ड विरोध का सामना करना पड़ा। 'राव कमेटी' को सफलता नहीं मिली उसका देशव्यापी विरोध हुआ।

स्वामीजी के अदम्य उत्साह और कार्यशीलता से ही दोनों धर्म विरोधी बिल सरकारी फाइलों के नीचे दबे हुए सिसकते ही रह गये।

गोवधबन्दी :—

गो केवल एक उपयोगी पशु ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति में वह हमारी 'माँ' कही गयी है अतः वह अवध्य है। वेद में गो को 'अघ्न्या' कहा है। भारत की पुण्य भूमि पर गोवध होता हो यह सचमुच ही एक दुःख की बात है। स्वामी जी ने इस समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया, तो उनकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठी उनसे नहीं रहा गया अतः धर्मसंघ के कार्यक्रम में उन्होंने गोरक्षा को भी सम्मिलित कर पारतन्त्र्य काल में तत्कालीन विदेशी सरकार से गोवधबन्दी की मांग प्रस्तुत की साथ ही यह दृढ़ संकल्प भी व्यक्त किया जब तक धर्मप्राण देश भारत की पुण्य-भूमि पर गोवध का काला कलंक दूर नहीं हो जाता तब तक यदि मोक्ष भी मिले तो उसे स्वीकार नहीं करना है। उनका कथन था कि जिस भूमि पर गो का रक्त गिरता है उस भूमि पर किये गये पुण्य नष्ट हो जाते हैं। असंख्य लोगों ने इनकी प्रेरणा से कुत्ता पालन छोड़कर, गाय पालना प्रारम्भ दिया किन्तु स्वामी जी ने अनुभव किया कि जब तक सरकारी स्तर पर जारी गो हत्या बन्द नहीं होगी।' इस समस्या का समाधान कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। अतः स्वामी जी ने गोवध बन्दी के लिये विशेष प्रयास किये। अपनी धर्म यात्राओं में प्रचार करते हुए स्थान-स्थान पर अपने

का अनुरोध भी करने लगे व्याख्यानों, वक्तव्यों, लेखों तथा पत्रों द्वारा सरकार से गोवध बन्द करने का अनुरोध भी करने लगे और अन्त में एतदर्थ 'धर्मयुद्ध' भी छेड़ना पड़ा उन्हें जिसका विस्तृत विवरण अन्यत्र प्रकाशित है।

पाकिस्तान :—

आर्य भारत के मूल निवासी हैं, वह कहीं बाहर से आकर यहाँ नहीं बसे हैं, किन्तु कूट-नीतिज्ञ विदेशी शासकों ने हमारे इतिहास को मनमाने ढंग से परिवर्तित किया, आर्यों को मध्य एशिया का निवासी ठहराकर उन्होंने हमें अपने ही देश में विदेशी बनाने का प्रयत्न किया और इसका भी एक कारण था; विदेशी शासक चाहता था कि भारत के हिन्दुओं में भारत के प्रति अपनत्व की भावना ही उत्पन्न न हो और वह ऐसा सब कुछ लिखकर अपने उस प्रयत्न में सफल भी हो सका। अनेक भारतीयों ने भी अंग्रेजों की हाँ में हाँ मिलाकर उनके लिखे इतिहास की पुष्टि की। इससे अंग्रेज तो प्रसन्न हुआ ही साथ ही मुसलमान भी प्रसन्न हो उठा। अंग्रेजों की कूटनीति का शिकार होकर, उनके द्वारा बताये गलत इतिहास पढ़कर तथा उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर भारतीय नेताओं ने एक दिन जब स्वयं ही अपने को मध्य एशिया अथवा उत्तरी ध्रुव से आया हुआ मान लिया तथा यहाँ की तत्कालीन जातियों पर अत्याचार करने की बात का समर्थन स्वयं करने लगे, फिर बताइये पाकिस्तान का विरोध ये कैसे कर सकते थे। जब आर्य भी विदेशी, मुसलमान भी विदेशी तब यह देश केवल हिन्दु का ही कह कर क्यों पुकारा जाये ? अतः मुसलमान देश का साझी बन बैठा और साझा कभी भी टूट सकता है—बस मुसलमान ने देश के बटवारे की आवाज उठानी प्रारम्भ कर दी। और जो व्यक्ति स्वतः अपने को भी इस भूमि पर विदेशी स्वीकार कर चुके थे वह भला पाकिस्तान की माँग का विरोध किस आधार पर करते। अतः देश के राजनीतिज्ञों की वाणी इस विषय में क्षीण होने लगी। यह देखकर इस राष्ट्र भक्त दण्डी सन्यासी श्री करपात्री स्वामी के हृदय पर चोट लगी। उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी—'हम भारत में विदेशी नहीं हैं' उन्होंने कहा—'अनादि काल से, सृष्टि के प्रारम्भ से हम यहीं रहते चले आये हैं। यह भारत हमारी मातृ-भूमि है, पितृभूमि है, और पुण्य-भूमि है, इस पर और किसी का भी स्वामित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता।'.....'इस देवभूमि को खण्ड-खण्ड नहीं किया जा सकता।'—और स्वामी जी ने धर्म-संघ के प्रचार के साथ पाकिस्तान-विरोध को भी अपने कार्य-क्रम का एक अंग बनाया। सैंकड़ों सभाएँ पाकिस्तान विरोध में, देश भर में आयोजित की गयीं। सहस्रों प्रस्ताव पास करके सरकार के पास भेजे गये। देश के कोने कोने से भारत की अखण्डता का नारा उठने लगा। इस तरुण-सन्यासी की आवाज देश के एक छोर से दूसरे छोर तक गूंज रही थी, परन्तु जब अपने ही देश-वासी भारत-विभाजन के समर्थक बन रहे थे तब विदेशी सरकार भला इस सच्चे राष्ट्र भक्त भविष्य दृष्टा तपस्वी की आवाज कैसे सुन सकती थी ? स्वामी जी सन् चालीस से ही कहा करते थे कि यह वर्तमान नेता एक दिन पाकिस्तान मान लेगें। अतः उन्होंने निरन्तर पाकिस्तान विरोध जारी रखा। पाकिस्तान बनने के इन कुपरिणामों को अपनी त्रिकालज्ञता से जानकर पहले ही जनता के सामने रक्खा परन्तु वाहरी ! अभागी हिन्दुजाति ऐसे त्रिकालज्ञों का वरदहस्त प्राप्त होते हुए भी भारत-

माता की जय बोलने वाले तीस करोड़ माँ के लालों के होते हुए भी, दश, दश वर्ष पहले ही पाकिस्तान स्थापना के कुपरिणामों को जानकर भी, तू कुछ न कर सकी तो इसमें किसी को क्या दोष दिया जा सकता है ? हाँ जिन्होंने जाना, अनुभव किया, उन्होंने यथा-शक्ति विरोध किया, सचेत किया और ठीक पाकिस्तान बनने के एक दिन पहले तक सारी शक्ति भर इसके विरुद्ध राजधानी में प्रदर्शन किया। सत्याग्रह किया, परन्तु जो होना था सो हुआ। कोई भी निष्पक्ष-ईमानदार इतिहास-कार यह कहे बिना नहीं रह सकता कि पाकिस्तान स्थापना के पहले या बाद में चाहे किसी ने पाकिस्तान विरोध में कितने ही नारे क्यों न लगाये हों परन्तु यदि सक्रिय और उचित समय पर कोई विरोध करने वाला भारत में था तो वह यही सन्त 'करपात्री' था, जिससे यह जघन्य कृत्य नहीं देखा गया और वह इस मातृहत्या-पातक से बचने हेतु अपने सहस्रों साथियों, भक्तों, महात्माओं सहित— उस समय जब विभाजन की योजना की स्वीकृति पर देश का जवाहर मुहर लगा रहा था, सहस्रों माँ, बहिन, बहू, बेटियाँ, बच्चे, बूढ़े, युवक असहाय दीन, हीन अवस्था में पड़े परदेशी होने वाले थे, अपनों द्वारा ही, जिन्हें छोड़ दिया गया था अपने ही नेताओं द्वारा अपने-अपने भाग्य पर,—जेल के सीकचों में बैठा था। वहीं से अपने परम कौतुकी प्रभु की विचित्र-संहार लीला को देखकर रोता हुआ भी, मुसकरा रहा था कि प्रभु यह क्या हो रहा है ?

सचमुच यदि भारतीय नेताओं में सद्बुद्धि का प्रादुर्भाव, इस महात्मा के कथनानुसार उस दिन हो गया होता तो आज भारत कुछ और ही होता। बाद में विभाजन जनित कुपरिणामों को देखकर तो राजर्षि टण्डन, महात्मा गांधी, डा० राम मनोहर लोहिया, सरसंघ चालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी, श्री स्वातन्त्र्यवीर, श्रीविनायक दामोदर सावरकर लोकनायक अणे आदि विचारकों ने तो देश विभाजन को महानभूल स्वीकार कर पश्चाताप का प्रदर्शन किया–परन्तु यह सभी शक्तियाँ यदि इस विरक्त सन्यासी का उस समय साथ दे देतीं तो आज भारत अखण्ड भारत होता और उसके आँगन में सभी जाति, धर्म सम्प्रदायों के लोग सानन्द प्रगति पथ पर आगे बढ़ते जैसे कि आज शेष खण्डित भारत में सबको समान अवसर सुलभ हैं। ●

अन्य संस्थाएँ

"शिक्षामण्डल"

शासक प्रायः यही चाहता है कि देश की शिक्षा उसके ही हाथों में रहे क्योंकि ऐसा होने से ही वह देश के नवयुवकों को अपने इच्छित सांचे में ढाल सकने में समर्थ हो सकता है अतः हमारे शासकों ने भी यही किया। उन्होंने जो शिक्षा हमें दी उसे प्राप्त कर हम प्रतिदिन भारतीयता से दूर ही होते चले गये। सरकार के अधीन शिक्षा को देखकर तथा उसमें अधार्मिकता एवं कुशिक्षा का पूर्ण प्रवेश देखकर स्वामीजी ने इस ओर भी ध्यान दिया।

'सद्‌शिक्षा से सद्‌बुद्धि, सद्‌बुद्धि से सदिच्छा, सदिच्छा से सत्प्रयत्न और सत्प्रयत्न से ही सत्‌फल की प्राप्ति होती है एवं सुख–शान्ति मिलती है।' —स्वामी ने कहा—'अतः यदि आज हमारे प्रयत्नों का सद्‌फल प्राप्त नहीं होता तो उसका कारण ही यह है कि हमारी शिक्षा ही सद्‌शिक्षा नहीं है।'

स्वामी जी ने अ० भा० धर्म-संघ के तत्त्वावधान में ही 'धर्म–संघ–शिक्षा–मण्डल' की स्थापना की। काशी, दिल्ली, वृन्दावन, हिसार, विठूर, मुजफ्फरपुर, चुरु, आदि अनेक नगरों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक कई 'धर्मसंघ विद्यालयों' की स्थापना की। उनका स्वतन्त्र पाठ्य-क्रम बनाया तथा परीक्षाओं की व्यवस्था की। इन सभी विद्यालयों में प्राचीन शैली के अनुसार गुरु–शिष्य परम्परा एवं भावना से पठन–पाठन चलता है। इन विद्यालयों में सैकड़ों विद्यार्थी प्राचीन प्रणाली से संस्कृत की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं तथा इन विद्यालयों ने देश को बड़े-बड़े विद्वान दिये हैं। जिन्हें इन आश्रमों में जाकर इन्हें निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनका कथन है कि सादगी एवं सात्त्विकता से परिपूर्ण इन आश्रमों को देखकर आज भी महर्षि वाल्मीकि, वशिष्ठ इत्यादि के समय की स्मृति हो आती है। स्वामी जी का विचार है 'कि सरकार कोई भी हो अपनी या पराई, शिक्षा उसके नियन्त्रण से मुक्त ही रहनी चाहिये; क्योंकि ऐसा न होने से शिक्षा परतन्त्र हो जायगी और शिक्षा की परतन्त्रता कभी भी हमारी परतन्त्रता का कारण बन सकती है।'

"धर्म–वीर–दल"

स्वामी जी के त्याग एवं तपस्या के साथ-साथ धर्मसंघ का कार्य–क्षेत्र भी विस्तृत होता गया; अतः उसके समस्त कार्यक्रमों को एक सूत्र में बांधने के लिये तथा इन्हें संगठित कर इनमें एकरूपता लाने के उद्देश्य से अ. भा. धर्मसंघ के पंचम महाधिवेशन में जो कि ग्राम ढेबवा, जिला छपरा (बिहार)

में सन् १९४५ ई० में सम्पन्न हुआ था एक अ० भा० 'धर्मवीरदल' की स्थापना स्वामी जी द्वारा की गयी। दल की सैकड़ों शाखाएँ देश भर में कार्य कर रही हैं। 'धर्मज्योति' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी दल के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए किया गया। देश के विभिन्न भागों में समय समय पर आयोजित धार्मिक, आध्यात्मिक उत्सवों एवं सम्मेलनों आदि के अवसर पर दल धार्मिक जगत् की सेवा निरन्तर करता आ रहा है।

"सनातनी दल"

'अभ्युदय का धारण जिससे हो वही 'धर्म' है और अभ्युदय की प्राप्ति जिससे हो वही नीति है, अतः धर्म और नीति का परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। नीति से ही शास्त्र और धर्म प्रतिष्ठित होते हैं, नीति से ही सामाजिक सुव्यवस्था होती है तथा शान्ति होने पर ही धर्म के अनुष्ठान में सुविधा होती है और धर्म की भावना फैलने से नीति भी कार्यान्वित एवं सफल होती है।' —इन्हीं विचारों को आगे रखकर पूज्य करपात्रीजी ने राजनीति में प्रवेश करने के लिये धार्मिक जनता का आह्वान किया।

सन् १९४५ ई० में नये निर्वाचन की घोषणा हो गयी। स्वामीजी ने देखा कि पाश्चात्य भावापन्न, धर्मशून्य व्यक्ति ही राजनीति के क्षेत्र पर अधिकार जमाये बैठे हैं। सरकार द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक मामलों में खुला हस्तक्षेप किया जा रहा है। राष्ट्रीय कही जाने वाली कांग्रेस द्वारा हिन्दु हितों की उपेक्षा हो रही है। ऐसेम्बली में उपस्थित हिन्दुकोड बिल पर सरकार तथा हिन्दु सदस्यों का रूख धर्म विरोधी एवं घातक है। राष्ट्रीय–संस्था–कांग्रेस का लोग के प्रति जो नरम रूख है उससे देश–विभाजन न होने देने की घोषणा सन्देहास्पद है। उससे हिन्दू–हित रक्षण सम्भव नहीं है। इधर धार्मिक समाज 'कोऊ नृप होहि हमें का हानि' का सिद्धात अपनाये बैठा है और उसी का यह परिणाम है कि व्यवस्थापिका परिषदों में एक के बाद दूसरा धर्म विरोधी बिल में परिणत हो रहा है।

साथ में स्वामी जी ने यह भी अनुभव किया कि अब केवल बाहर रहकर विरोध करने से काम चलने वाला नहीं है। ऐसेम्बलियों की कुर्सियों पर बैठे अपने ही, गैरों के समर्थक हो रहे हैं। अतः स्वामीजी ने धार्मिक जनता को क्रियात्मक रूप से राजनीति में प्रवेश करने का अनुरोध किया और इस कार्य के संचालन के लिए ३ सितम्बर १९४५ को उन्होंने 'अखिल भारतीय सनातनी दल' का संगठन किया। इसमें अ० भा० धर्मसंघ, भारत धर्म-महामण्डल,पण्डितसभा, सनातन धर्म सभा, श्री योगी महासभा इत्यादि अनेक संस्थाओं ने भाग लिया। अ० भा० हिन्दू महासभा से भी समझौता हो गया और यह निश्चित किया गया कि जो 'सनातनी दल' के प्रतिज्ञा पत्र हस्ताक्षर कर दे उसी को जनता को मत देना चाहिये इस प्रकार जो व्यक्ति धार्मिक हितों की रक्षा करने, अधार्मिक बिलों के

प्रस्तुत होने पर उनका विरोध करने भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील होने, पाकिस्तान का विरोध करने, गोवध रोकने व गोरक्षा कराने, किसान मजदूरों के हितों की रक्षा करने इत्यादि से युक्त सनातनी दल के प्रतिज्ञापत्र के अनुसार भारतीय संस्कृति रक्षण के लिये सतत प्रयत्नशील रहने की घोषणा करे उसे ही जनता से अपना अमूल्य मतदान प्रदान करने की प्रार्थना की गयी। स्वामीजी ने भारत की व्यापक यात्रा की। उन्होंने उक्त कार्यक्रम एवं विचार धारा को जनता के समक्ष रखने का पूर्ण प्रयास किया। उन्होंने बताया कि 'धर्म नीति का पति है, धर्म से विरहित होकर नीति विधवा है और विधवा नीति में फलोत्पादन की क्षमता नहीं रहती। धर्म-विहीन नीति प्रारम्भ में भले ही चमत्कारिक सफलता दिखलाये पर अन्त में वह पतन की ही ओर ले जायगी। समस्त महाभारत इस का ज्वलंत प्रमाण है।'

धार्मिक जनता में स्थान-स्थान पर राजनैतिक चेतना आने लगी और वह अपने शत्रु-मित्र की पहिचान करने का प्रयत्न सा करने लगी। 'कोऊ नृप होई' वाली उदासीन भावना का परित्याग सुप्त भारतीय समाज के हृदय में से होने लगा स्वामीजी ने कहा कि 'यदि धर्म को नष्ट करके स्वतन्त्रता प्राप्त भी हुई तो उससे लाभ क्या ?' किसी का मस्तिष्क क्लोरोफार्म से विकृत कर यदि उसके हाथ पैरों की हथकड़ी-बेड़ी काट भी दी जायें तो क्या उस व्यक्ति को मुक्त कहा जायगा ? अतः हमारा मस्तिष्क भी ठीक रहे—हमारी आध्यात्मिकता और धर्म बना रहे और हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हो तभी वह स्वतन्त्रता सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता होगी। और ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना स्वामीजी ने अपने सहस्रों व्याख्यानों द्वारा जनता में जागृत कर दी। 'स्वतन्त्रता के नाम पर जो भी व्यक्ति तुम्हारा वोट मांगने आवे उससे उपर्युक्त प्रतिज्ञा करा लो कि वह तुम्हारे धर्म में कोई हस्तक्षेप करेगा। ऐसे आश्वासन के बिना किसी को भी अपना मत देना अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना ही सिद्ध होगा।' —ऐसी घोषणा सनातनी दल की ओर से प्रचारित की गयी जिसके परिणामस्वरूप जनता की वोटों पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझने वाले धर्म विरोधियों को सचमुच ही बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। किसी सीमा तक इस व्यापक जन चेतना उत्पन्न करने का श्रेय स्वामीजी को प्राप्त है।

●
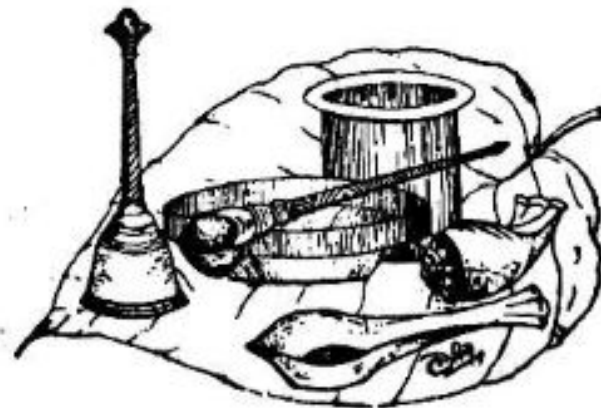
अरण्यों में चमत्कारी विचित्र पुष्पों, पल्लवों की रचना देखकर, भिन्न भिन्न फलों के अद्‌भुत माधुर्य्य, सौन्दर्य, सौरस्य; सौगन्ध्य देखकर क्या उनके निर्माता के स्वीकार करने में भी आपत्ति हो सकती है ? क्या मयूर (मोर) के अंगों, प्रत्यङ्गों तथा पिच्छों के रचनावैचित्र्य को देखकर विश्वकर्त्ता की विचित्र-ज्ञान-क्रिया शक्तियों पर सन्देह रह सकता है ? शुक (तोता) का मनोरम हरितरूप एवं रक्त चंचु तथा हंस की विचित्र शुक्लिमा (श्वेतता) ही अपने रचयिता की सर्वज्ञता नहीं सिद्ध करदेती ? माना कि आपके पूर्वज (?) पशुओं से शिक्षा ग्रहण करके सभ्य हुये। बहुत दिनों बाद शिल्पकला आदि का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु, इन जंगल के विविध पत्रों, पुष्पों, फलों तथा पक्षियों के निर्माता को कला-कौशल किसने सिखाया ? जब समस्त निर्माण ही किसी की ज्ञान-क्रिया-शक्ति का वैभव है, तब विश्व के मूल में ही अचिन्त्य, अपरिमेय ज्ञानशक्ति एवं क्रिया-शक्ति का प्राखर्य्य सिद्ध ही है।

धर्मयुद्ध

कथित राष्ट्रीय नेताओं ने मुसलमानों की पृथक राष्ट्र की मांग के आगे घुटने टेक दिये और केन्द्र में अन्तरिम सरकार स्थापित हो गई। जिसमें प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू एवं वित्तमन्त्री नवाबजादा लियाकतअली आदि (मुसलिम लीगी) भी सम्मिलित थे। अब तो धर्म विरोधी बिलों में और भी अधिक प्रगति आई। शास्त्र एवं धर्म विरुद्ध सगोत्रविवाहबिल, तलाकबिल आदि कानून सरकार द्वारा प्रस्तुत थे।। हिन्दु समाज के लिए साक्षात् कोढ़ जैसा 'हिन्दूकोड' जो एसेम्बली के सामने पहिले से था ही अब सुधारकों को इस प्रकार के बिल शीघ्रतापूर्वक कानून के रूप में परिवर्तित कराने में सरलता दीख पड़ने लगी।

अनेक वर्षों के सतत् प्रयत्नों से यद्यपि जनता में इन बिलों के प्रति प्रबल विरोधी भावनाएँ उत्पन्न हो चुकी थीं किन्तु फिर भी सरकार जनता की उन भावनाओं की ओर कोई भी ध्यान देती नहीं दीख पड़ रही थी। जब सरकार ने कोई न सुनी तब अ० भा० धर्मसंघ के षष्ट् महाधिवेशन के अवसर पर बम्बई में, १६ जनवरी, १६४७ ई० को पूज्य स्वामी जी ने घोषणा की कि 'यदि आगामी अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल, ३ संवत् २००४ विक्रमी तक हमारी गोवध बन्दी इत्यादि मांगें न पूर्ण हुई तो हम इस दिन से धर्मयुद्ध छेड़ देंगे।'

'धर्मयुद्ध' की घोषणा के साथ स्वामीजी ने प्रचार के साथ-ही-साथ 'धर्मयुद्ध' का प्रचार भी प्रारम्भ कर दिया। लोक कल्याण की इस कामना की पूर्ति के लिये स्वामीजी ने कठिन व्रत धारण किया। इस समय आप नौ दिन तक जल की एक बूंद भी ग्रहण नहीं करते थे, अन्न दुग्ध आदि का तो कहना ही क्या ? नौ दिन के पश्चात् अनुष्ठान करके केवल गाय का कुछ दूध और फलादि लेकर व्रत का पारायण करते और फिर अगले नौ दिन के लिये वही कठोर साधना प्रारम्भ हो जाती। साथ ही दिन-रात धर्मयात्रा भी चलती रहती जिसके फलस्वरूप महाराज का शरीर कृश हो गया, जटाएँ बढ़ गयी थीं।

इस प्रकार मन में धर्म और गाय की रक्षा की तड़प लिये यह तरुण सन्यासी देश के कोने-कोने में अलख जगाता फिरा। सरकार से लिखा-पढ़ी, शिष्ट-मण्डलों का भेजना, प्रस्ताव भिजवाने इत्यादि का कार्यक्रम भी तीव्र गति से चालू था, किन्तु सरकार के कान पर जूं तक न रेंगी। अत: २६ अप्रैल, १६४७ ई० को स्वामीजी ने एसेम्बली के सामने 'भारत अखण्ड हो' 'गोवध बन्द हो' 'अधार्मिक बिल रद्द हों, 'मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित रहे, 'विधान शास्त्रीय हो' ये पाँच मांगे

उपस्थित करते हुए धर्म-युद्ध का श्रीगणेश कर दिया। धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व स्वामीजी ने सर्व श्री नेहरूजी, पटेलजी, राजेन्द्र प्रसादजी तथा कृपलानी जी इत्यादि बड़े-बड़े नेताओं को २४ अप्रैल १९४७ को पत्र भेजकर धर्म-युद्ध प्रारम्भ करने की सूचना दे दी थी। परन्तु इस संत की शान्तिपूर्ण माँगों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। श्री सत्यव्रत ब्रह्मचारी के नेतृत्व में प्रदर्शन करता हुआ पहला जत्था संसद-भवन के सामने पहुँचा। सत्याग्रह का उद्घाटन करने के लिए स्वामी श्री करपात्री जी स्वयं उपस्थित हुए और तत्काल ही पुलिस द्वारा बन्दी बना लिए गये। इन्हें लाहौर जेल में भेजकर उस कोठरी में रखा गया जिसमें कभी शहीद सरदार भगत सिंह रखे गये थे। उसी कोठरी में स्वामी जी ने रूद्ध कण्ठ एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस अमर शहीद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

हिन्दू सभा के प्रमुख नेता भाई परमानन्दजी स्वामीजी के इस कृत्य से बहुत ही प्रभावित हुए। लाहौर जेल में स्वामीजी से एक भेंट के पश्चात् आपने कहा था कि 'मुझे तो स्वामी जी के अन्दर गुरू तेग बहादुर की आत्मा का दर्शन हुआ है, जो धर्म पर विपत्ति देखकर व्याकुल हो उठी है और उसके लिये कठिन से भी कठिन यातनाएँ सहने के लिये तैयार हुई है।' यह धर्म-युद्ध लगभग ९ मास तक चलता रहा जिसमें समस्त देश भर के अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों ने भाग लिया। लगभग ५००० धर्मवीर जेल गये अथवा जंगलों में डाले गये। गौस्वामी लक्ष्मणाचार्य, स्वामी कृष्णानन्द तथा स्वामी मुकुन्दाश्रमजी, इन महात्माओं का बलिदान भी हो गया। किन्तु सरकार टस से मस न हुई। हाँ, जनता का उग्र विरोध देखकर उसने स्वामीजी को अवश्य मुक्त कर दिया।

"नोआखाली में"

देश की पुकार हो या धर्म की, प्रश्न राजनैतिक हो या सामाजिक, करपात्री जी लोक कल्याण से सम्बन्धित किसी भी कार्य में पीछे नहीं रहे। अक्तूबर १९४६ में पाकिस्तानी गुण्डों के संगठित प्रयत्नों के फलस्वरूप नोआखाली में हिन्दुओं का व्यापक विनाश हुआ, बलात् धर्म परिवर्तन हुए, देवमन्दिर, तीर्थ स्थान भ्रष्ट किये गये, स्वामी जी से यह सब कुछ नहीं देखा गया। वह वहाँ पहुँचे और वहाँ के ग्राम–ग्राम में पैदल घूमे। उन्होंने कुमिल्ला, चांदना, चौमुहानी, रामगंज, त्रिपुरा, दत्तपाड़ा, सोमपाड़ा, शाहगंज, लक्ष्मीपुर, दलालगंज इत्यादि अनेकों स्थानों पर हिन्दुओं की परिस्थिति स्वयं अपने नेत्रों से देखी, सरकारी कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित किया, स्वयं सेवकों की नियुक्ति की और दीन–हीन दुःखी और भयभीत हिन्दुओं के मन में 'रामनाम' के उपदेश से वीरता का संचार किया। धर्मसंघ की ओर से भारी मात्रा में कम्बल, वस्त्र, अन्नादि का वितरण कराया गया। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी इत्यादि के कैम्पों में चंडी यज्ञों का अनुष्ठान कराया, जप–पाठ कराये, जनता से पीड़ितों को सहायता देने की अपील की तथा धर्म परिवर्तितों की पुनः शुद्धि की शास्त्रीय व्यवस्था की घोषणा की।

उन्होंने कहा कि—'बलात् धर्म परिवर्तन सर्वथा अमान्य है। जिन हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया है उन्हें भी अपने धर्म में सुस्थिर रहना चाहिए क्योंकि जो कार्य बलात्

करने पड़ते हैं उनसे वास्तविक स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता। स्वेच्छा, परेच्छा किसी तरह भी देह में मल लग जाने से जैसे देह प्रक्षालन कर लेना आवश्यक है। उसी प्रकार भगवन्नाम स्मरण, गंगाजल पान आदि से आत्मशोधन अनुचित नहीं है। गंगाजल का पान तथा भगवन्नाम स्मरण सभी दुष्कृत्यों का प्रशमन कर सकता है। हिन्दुओं में अनेक श्रेणियाँ हैं ही, अतः उनमें जिनके साथ बलात्कार हुआ है, मलेच्छों द्वारा गर्भाधान, सन्तानोत्पादन भी हो गया है उनका भी हिन्दू श्रेणी का संग्रह अनुचित नहीं है। सभी शास्त्रियों और आचार्यों का कहना है कि वे हिन्दू ही हैं और उनका पूर्ण सम्मान होना चाहिये। उन्हें गले लगाना चाहिये जैसे विपदग्रस्त का अधिक उपचार किया जाता है वैसे ही उन्हें विपदग्रस्त समझकर उनका अधिक सम्मान होना चाहिये। उनका यथाविधि संशोधन, संस्थापन परम आवश्यक एवं शास्त्र सम्मत है।'

स्वामीजी के उक्त वक्तव्य से बंगाल के पीड़ित हिन्दुओं में भारी आशा का संचार हुआ। स्वामीजी की प्रेरणा से बंगाल के धन कुबेरों ने धर्मसंघ की ओर से तथा व्यक्तिशः दिल खोलकर सहायता की। निष्पक्ष जानकारों का कहना था कि जैसा सहायता कार्य स्वामीजी के द्वारा संचालित सहायता केन्द्रों में हुआ वैसा सरकारी केन्द्रों में भी नहीं देखा गया। वनगाँव तथा रानाघाट से लगभग २४ मील दूरी पर एक शिविर बनाया गया जहाँ नित्य २००० पीड़ितों के लिये भोजन की व्यवस्था की गई तथा उस ओर ही ५००० बीघा जमीन मोल लेकर 'रामनगर' नाम से एक बस्ती बसाई जिसमें प्रत्येक परिवार को एक बीघा जमीन देने की व्यवस्था की गई।

इस प्रकार स्वामी करपात्रीजी ने नोआखाली के शरणार्थियों की समस्या में भी जितना सक्रिय सहयोग दिया है उसकी ओर से भी कोई विचारशील व्यक्ति आँखें नही मूंद सकता

स्वामी श्री करपात्रीजी द्वारा प्रदत्त जयकारे—
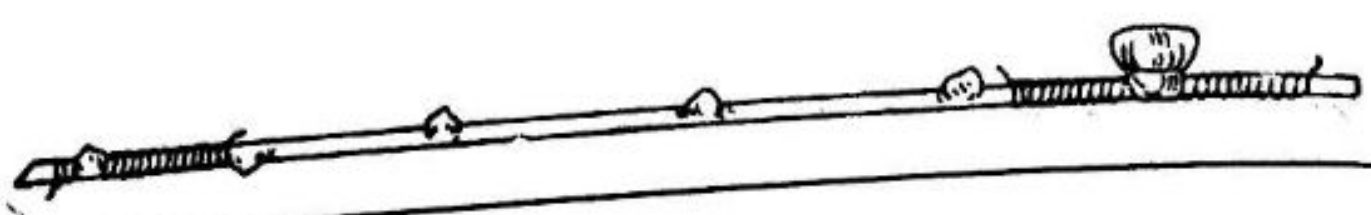
(१) गोहत्या बन्द हो।
(२) भारत अखण्ड हो।
(३) मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित रहे।
(४) धर्म में हस्तक्षेप न हो।
(५) शासन विधान शास्त्रीय हो।

धर्म की जय हो,
अधर्म का नाश हो,
प्राणियों में सद्भावना हो,
विश्व का कल्याण हो।

हर
हर
महादेव

"पाकिस्तान–निर्माण"

'धर्म-युद्ध' चल रहा था और स्वामी जी भारत भर में घूम-घूमकर उसके समर्थन में जनमत जागृत कर रहे थे। इसी बीच भारत के इतिहास की वह तिथि भी आ पहुँची जिस दिन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी और वह तिथि थी १५ अगस्त १९४७ ई०। इस दिन देश को स्वतन्त्रता मिली किन्तु कैसी? विभाजित, खण्डित, पाकिस्तान बनवाकर। इस दूरदर्शी सन्यासी का मन जिस बात से सशंकित था वही हुआ। जो नेता कहते फिरते थे कि पाकिस्तान हमारी लाशों पर बनेगा, उन्होंने ही देश के साथ विश्वासघात किया। ४० करोड़ सपूतों के रहते हुए भारत मां का अङ्ग-भङ्ग हो गया। स्वामीजी की आत्मा कराह उठी। कारण स्पष्ट था। उन्होंने भारत की अखण्डता के लिए जितना प्रयत्न किया था उतना सम्भवतः अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं किया था। बाद में तो समाजवादी, हिन्दूसभाई, जनसंघी सभी ने "अखण्डभारत" का नारा लगाया किन्तु उपयुक्त समय पर उचित एवं सक्रिय विरोध करने वाला निर्भीक, दूरदर्शी एवं राष्ट्र–भक्त नेता भारत में यदि कोई था तो केवल यही तरुण तपस्वी करपात्री स्वामी।

: : भारत अखण्ड हो : :

"गोवध विरोधी आन्दोलन"

पूज्य स्वामीजी परतन्त्र भारत में श्री धर्मसंघ के जन्म काल से ही गोवधबन्दी के लिए सतत् प्रयास करते आ रहे थे परन्तु तत्कालीन सरकार ने इस ओर जब कोई ध्यान नहीं दिया तब स्वामीजी ने धर्मसंघ के मंच से १९/१/४७ को अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने की घोषणा की। और अन्त में स्वामीजी को २८/४/४७ को काउन्सिल हाऊस पर प्रदर्शन करते हुए गिरफ्तार कर लिया गया।

जैसे तैसे स्वतन्त्रता देवी के दर्शन तो हुए परन्तु साम्प्रदायिक आग—अलीगढ़–काण्ड, सीमान्त काण्ड, नोआखाली काण्ड, पंजाब काण्ड एवं बंगाल हत्याकाण्डों के रूप में धधकती ही रही। राजधानी में प्रबन्ध अस्त-व्यस्त हो रहा था, चारों ओर अशान्ति थी; काश्मीर पर शत्रु का आक्रमण हो रहा था, लीगी गुण्डे दिल्ली के लाल किले को हस्तगत करने का षड्यन्त्र रच रहे थे, सारे भारत में

कोटि होम कोई हुआ सुना नहीं था पूर्व ।
स्वामी जी ने कर दिया वह भी दृश्य अपूर्व ।।

देवों का इस देश से हुआ पुनः सम्बन्ध ।
पूज्य चरण माध्यम हुए जन जन का निर्बन्ध ।।

कोटि कोटि जनता जुड़ी वेदों के विद्वान् ।
स्वाहाकारों के सहित था आहुति प्रदान ।।

उन दृश्यों को देखने देव मण्डली नित्य ।
नभ में एकत्रित हुई यमुना तीर विविक्त ।।

'नारायण' कहते हुए कोटि कोटि के मध्य ।
पूज्य चरण निज चरण से विचरण करते सद्य ।।

कन्या से कश्मीर तक अटक कटक के बीच ।
यज्ञों के विस्तार से धर्म बल्लरी सीचँ ।।

आज जहां भी धर्म है पूज्य चरण ही हेतु ।
युद्ध अधर्मों से किये खूब बनाये सेतु ।

तथाकथित साम्प्रदायिकता का नंगा नाच हो रहा था। स्वामीजी ने अगस्त १९४७ में देश विभाजन का विरोध करने, देश को अखण्ड रखने की माँग को लेकर, गोवध बन्दी के प्रश्न के साथ-साथ-पुनः प्रदर्शन किये—इन्हें पुनः बन्दी बना लिया गया परन्तु शीघ्र ही छोड़ दिया गया। स्वामीजी ने राजधानी की स्थिति को पहिचाना और देहली में चल रहे धर्मयुद्ध को स्थगित करने की घोषणा कर दी।

अब उन्होंने मथुरा की ओर मुंह मोड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में चौदह बूचड़खानों का अस्तित्व था। स्वामीजी ने उन्हें बन्द करने की माँग की। सत्याग्रह का संचालन करने के लिए स्वामीजी मथुरा पहुँचे। स्वामीजी को मथुरा के कलक्टर ने, उनकी घोषणा के २४ घण्टों के अन्दर ही मथुरा से बाहर चले जाने का आदेश दिया। स्वामीजी ने इस आदेश की अवहेलना की, अतः वह सत्याग्रह के प्रारम्भ होने से पूर्व ही २९/८/४७ को बन्दी बनाकर ६ मास के लिये जेल में डाल दिये गये। किन्तु इस पर सत्याग्रह रुका नहीं, वह चला और हजारों धर्मवीर उसमें भाग लेकर जेलों में गये। अन्त में मथुरा नगरपालिका को गोवध बन्दी का प्रस्ताव स्वीकृत करना पड़ा।

अब स्वामीजी ने धर्मयुद्ध का रुख बदला। उन्होंने आन्दोलन को जो दिशा दी वह विलक्षण थी। स्वामीजी ने स्थानीय बोर्डों में गोवध बन्दी के प्रस्ताव स्वीकृत कराने की ओर लोगों को अग्रसर किया। फलतः एक के बाद दूसरी नगरपालिकाओं तथा जिलाबोर्डों में स्थान-स्थान पर गोवध बन्दी के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये—मथुरा में भी गोवध बन्द हो गया। ब्रजभूमि के चौदह बूचड़खाने बन्द हो गये—३२ जिलों में ऐसे प्रस्ताव पास हुए। इस प्रकार स्वामीजी के प्रयत्नों से इस दिशा में सफलता प्राप्त हुई। मथुरा सत्याग्रह के सम्बन्ध में स्वामीजी आगरा जेल में बन्द रहे; वहाँ आपने बन्दियों की दुर्दशा का निरीक्षण किया तथा जेल में किस प्रकार सुधार हो सकता है तथा किस प्रकार की धार्मिक, नैतिक शिक्षा वहाँ अपराधियों को दी जानी चाहिये इस पर भी आपने अपने विचार सरकार को लिखकर भेजे। परन्तु सरकार भला ऐसे महात्मा की वाणी पर क्यों ध्यान देने लगी थी? जेल में स्वामीजी का भजन, सत्संग, उपदेश, तप, लेखन कार्य तथा अन्य नियम पूर्ववत् चलते रहे। बड़े-बड़े विरोधी भी जेल में उनके समर्थक बन गये। स्वामीजी का ९-९ दिन का निर्जल व्रत का कठोर नियम जेल में भी यथापूर्व चलता रहा। अन्त में अवधि से पूर्व ही इन्हें मुक्त कर दिया गया। आप मुक्त होकर भी शान्ति से नहीं बैठे अपितु पत्रों, लेखों, भाषणों, सभाओं एवं प्रस्तावों द्वारा अपनी धर्मयात्रा में निरन्तर अपने उद्देश्य के प्रचार में लगे रहे।

वर्ष १९४९–५० में पुनः स्वामीजी ने दिल्ली में अहिंसात्मक सत्याग्रह चलाया। सन् १९५२ में हस्ताक्षर अभियान चलाया गया संघ द्वारा। १९५४ में अ० भा० धर्मसंघ के सम्मेलन में विराट् गोरक्षा सम्मेलन हुआ। श्री स्वामी करपात्री जी ने लखनऊ में सत्याग्रह किया परन्तु उन्हें गिरफ्तार न करके पन्तजी ने सादर आमन्त्रित किया और प्रदेश में गोवध बन्दी का आश्वासन दिया।

उत्तर प्रदेश तथा बिहार में गोवध बन्दी कानून महाराज की प्रेरणा से बने।

सन् १९५४-५५ में कानपुर में 'अहिंसात्मक धर्मयुद्ध समिति' का गठन किया गया-- जिसने पूज्य करपात्रीजी की प्रेरणा से कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली में जोरदार आन्दोलन चलाये गये जो पौने दो वर्ष तक चलते रहे। साठ हजार धर्मवीर इसमें जेल गये; कई बलिदान हुए परन्तु केन्द्र सरकार ने सम्पूर्ण भारत के लिये एक केन्द्रीय गोवध बन्दी कानून न बनाने की हठ नहीं छोड़ी।

स्वामीजी ने अप्रैल १९६२ में हरिद्वार में पुनः सम्मेलन बुलाया और १८-१०-६२ को अकोला से पैदल बम्बई-देवनार में बनने वाले बूचड़खाने को रोकने के लिये प्रस्थान किया। २३-१०-७२ को पैदल जन-जागरण करते हुए बम्बई पहुँचे। जन-जागृति, भारत में एक ओर से दूसरे छोर तक उत्पन्न करने का श्रेय इस महात्मा-सन्यासी स्वामी श्री करपात्रीजी को ही है।

मार्च १९६५ में अ० भा० धर्मसंघ के निश्चयानुसार एक शिष्टमण्डल ने शंकराचार्यों के नेतृत्व में प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी से मिलकर सम्पूर्ण भारत में गोवंशवध निषेध कानून की मांग करते हुए विशेषतः बम्बई, कलकत्ता के बूचड़खानों के निर्माण को तुरन्त रोकने का आग्रह किया। प्रधानमन्त्री जी एवं तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा जी ने गोहत्या बन्दी कानून बनाने का आश्वासन भी दिया। परन्तु वह अपना वचन पूरा करने के लिये, दुर्भाग्यवश, ताशकन्द से वापिस न लौट सके।

सन् १९६६ में प्रयाग माघ मेले के अवसर पर पूज्य स्वामीजी की प्रेरणा से अ० भा० धर्मसंघ शिविर में विशाल गोरक्षा सम्मेलन हुआ, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि अब आन्दोलनों, प्रस्तावों, शिष्टमण्डलों आदि से काम नहीं चलेगा अपितु बलिदान देना होगा। गो की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति देनी होगी। इसी संकल्प से पूज्य स्वामी जी व अन्य महात्माओं ने पुनः धर्म-यात्राएँ प्रारम्भ कर दीं। मार्च १९६६ से महात्माओं ने दिल्ली में धर्मयुद्ध का श्री गणेश कर दिया। अप्रैल १९६६ में सब नेताओं ने मिलकर निर्णय किया कि यदि ५-६ व्यक्ति भी गोहत्याबन्दी के लिए प्राणों की बाजी लगाने में अपना नाम दे दें तो सफलता निश्चित है। मई १९६६ में चित्रकूट में राम-राज्य परिषद के अधिवेशन में पुनः यही घोषणा की गयी। श्री स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज शंकराचार्यों के साथ दिल्ली पधारे। सभी गोसेवियों से विचार विमर्श चला। स्वामीजी पूर्व कार्यक्रम के अनुसार ऋषिकेष चले गये।

देश के प्रमुख गोभक्त नेता सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारी श्री भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार को लेकर गम्भीर विचार विमर्श हेतु स्वामीजी से मिलने ऋषिकेष पहुँचे। कोयल घाटी स्थित शिविर में सर्वोच्च बैठक हुई जिसमें स्वामीजी ने गोहत्या बन्दी के लिये एक 'शपथ-पत्र' तैयार किया उस पर सर्वप्रथम अपने हस्ताक्षर किये तथा लगभग चालीस अन्य सुप्रसिद्ध मूर्धन्य गोभक्त नेताओं ने अपने हस्ताक्षर किये।
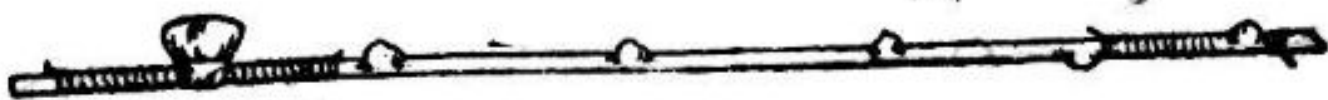
सितम्बर १६६६ में दिल्ली में इन नेताओं की मीटिंग हुई तथा सात महानुभावों की एक सर्वोच्च समिति बनाई गई जिसमें स्वामीजी का नाम प्रमुख था। ५/६/६६ को इस सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति की ओर से संसद भवन पर विशाल प्रदर्शन किया गया। गृहमन्त्री को गोहत्या बन्दी के लिये ज्ञापन दिया गया। स्वामीजी ७ नवम्बर, १६६६ को संसद भवन पर होने वाले विशाल प्रदर्शन की तैयारी में लग गये। उन्होंने इस आन्दोलन की सफलता के लिए अखण्ड लक्षचण्डी यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया।

अन्ततोगत्वा ७ नवम्बर, १६६६ को दस लाख गोभक्त नर-नारियों के साथ गोहत्याबन्दी की माँग को लेकर पूर्ण अहिंसात्मक प्रदर्शन किया तथा संसद-भवन के सामने सम्मेलन के मंच से स्वामीजी ने घोषणा की कि 'हमारा किसी दल विशेष से द्वेष नहीं है। हम किसी भी राजनीतिक माँग को लेकर नहीं आये हैं। इस समय जो शासनारूढ़ है वह हमारे ही घर के लोग हैं। हम उन सबका कल्याण चाहते हैं। हम तो केवल 'गोरक्षा की माँग रखने आये हैं।'' —परन्तु शासन ने दमनचक्र की नीति अपनाई और प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार भी किया गया।

८/११/८६ को अपनी गिरफ्तारी के समय स्वामीजी ने कहा कि 'अहिंसात्मक और शान्ति-पूर्ण ढंग से गोरक्षा आन्दोलन चलाते रहना चाहिये।' आंदोलन चलता रहा। अनशन होते रहे। अनेक धर्मवीरों ने अनशन से प्राणोत्सर्ग किये—स्वामीजी को ६/१२/६६ को आगरा जेल ले जाकर छोड़ दिया गया। तिहाड़ जेल में स्वामीजी पर घातक प्रहार किया गया, जबकि वह भजनोपदेश में लीन थे इस चोट में उनके शरीर पर नीले चिह्न पड़ गये। सिर फूट गया तथा वह बेहोश हो गये—एक आंख की ज्योति भी प्रायः जाती रही। यदि एक महात्मा स्वामीजी के ऊपर लेटकर स्वयं उन नम्बरी कैदियों के लोहे के डण्डे से किये गये प्रहार को सहन न कर लेते तो स्वामीजी जीवित कारागार से न निकल पाते। 'तिहाड़ काण्ड' सम्बन्धी विस्तृत विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित हुआ है।

अन्ततोगत्वा सरकार झुकी उसने आश्वासन दिये। गोहत्या बन्दी की मांग को सिद्धान्तः स्वीकार करते हुए उसे किस प्रकार लागू किया जाये, इसके लिये समिति बना दी—फलस्वरूप पुरी के शंकराचार्यजी, ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी, स्वामी रामचन्द्र वीर इत्यादि सभी अनशनकारी महात्माओं ने अनशन भंग किये। तब से सतत् प्रयत्नशील रहे यह सन्यासी। जनता शासन में भी श्रीयुत् मोरारजी भाई, श्री चरण सिंह जी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी, श्री एच० एम० पटेल जी, श्री चन्द्रशेखरजी इत्यादि नेताओं को स्वामीजी ने व्यक्तिगत पत्र लिखकर गोवंश वध बन्दी करने का अनुरोध किया —परन्तु वाहरी ! भारत सरकार स्वयं क्षण-क्षण बदल रही है। परन्तु केन्द्रीय कानून बनाकर सम्पूर्ण भारत में गोवध निषेध के अपने आश्वासन को अभी तक पूरा नहीं कर पायी है और स्वामीजी जीवन भर प्राण-पण से इसके लिये सचेष्ट रहे।

"निर्भीकवक्ता"

३० जनवरी १९४८ को गांधीजी का निधन हुआ। स्वामीजी सुनकर स्तब्ध रह गये। वह उस समय प्रयाग में आयोजित धर्मसंघ के आठवें महाधिवेशन के अवसर पर वहीं थे। उन्होंने तत्काल समवेदना प्रस्ताव स्वीकृत किया और मौन होकर भगवान् से उनकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना की। साथ ही भारत में फैली इस हिंसात्मक अधार्मिकता का बड़े कड़े शब्दों में विरोध किया। तत्कालीन सरकार ने गांधीजी की नृशंस हत्या का बदला हिन्दू संस्थाओं से लिया। राष्ट्रीय स्वयं सेवकसंघ के गुरूजी श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर को बन्दी बना लिया गया। हिन्दू सभा को भी 'गांधी हत्या' से सम्बन्धित ठहरा कर समाप्त प्रायः कर दिया गया। हिन्दू नेता जेलों में बन्द कर दिये गये। ऐसे भीषण काल में जब सरकार के विरूद्ध कुछ भी कहने का किसी में साहस नहीं था और कुछ भी आलोचना करने वाले को हत्या से सम्बन्धित करार दे दिया जाता था, तब स्वामीजी ने बड़ी निर्भीकता के साथ सत्य का पक्ष लेकर सरकार की कड़ी आलोचना के साथ संघ को निर्दोष बतलाते हुये उसके सदस्यों को मुक्त करने की जोरदार मांग की। इस समय सारे ही भारत में एक स्वामीजी ही ऐसे व्यक्ति थे जिनकी निर्भीकवाणी से सत्य का उद्घोष तथा निरपराधों के प्रति न्याय की मांग सुनाई देती थी।

स्वामीजी को भी काशी में जन-सुरक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी बना लिया गया था तथा कई महीने जेल में रखा गया किन्तु कोई भी आरोप सिद्ध न होने के कारण वे कुछ समय पश्चात् ही मुक्त कर दिये गये। सचमुच भारत में उस समय शान्तिपूर्वक, वस्तुस्थिति को स्पष्ट शब्दों रखते हुये सत्य का पक्ष लेने वाला निर्भीक नेता यदि कोई था वह यही निर्मुक्त सन्यासी करपात्री स्वामी था।

जिस प्रकार हंस परस्पर मिले हुए दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है उसी प्रकार जो आत्मा-अनात्मा; दृक्-दृश्य अथवा पुरुष-प्रकृति का विवेक कर सकता है; वह हंस कहलाता है। यह योग्यता सांख्यवादियों में भी देखी जा सकती है। वे क्षीर-नीर-विवेक के समान दृक्-दृश्य, अथवा आत्मा-अनात्मा का विवेक कर सकते हैं; किन्तु उनकी दृष्टि में वे दोनों ही तत्त्व सत्य रहते हैं। वेदान्तियों की दृष्टि में दृश्य की सत्ता नहीं रहती; इसलिये उन्हें परमहंस कहा जाता है। इस प्रकार जिसकी दृष्टि में सम्पूर्ण दृश्य का बाध होकर केवल शुद्ध चेतन ही अवशिष्ट रह गया है उसे परमहंस कहते हैं।
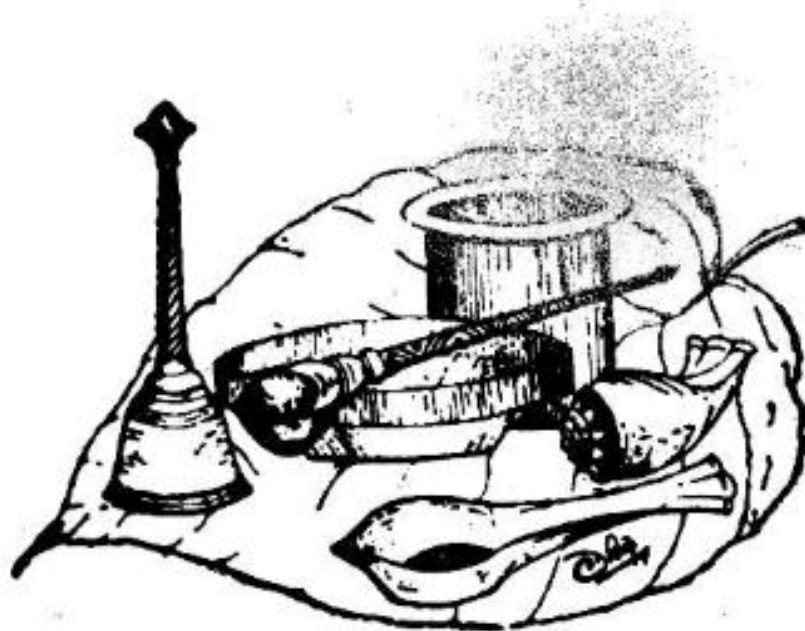
राजनीति में

एक ओर ऐसा भयंकर समय था और दूसरी ओर धर्म विरोधी दल संसद में 'हिन्दूकोड' पास करने पर उतारू था । जनता असहाय थी, उनके नेता बन्द थे अतः स्वामीजी ने ऐसे समय में पुनः एक बार सारे भारत की 'कोड–विरोधी' यात्रा की । इतना व्यापक और प्रभावशाली तर्कयुक्त एवं सुगठित रूप से प्रचार कार्य किया गया इस सर्वस्व त्यागी तपस्वी विरक्त महात्मा के द्वारा सम्पूर्ण देश में कोड विरोधी लहर चल पड़ी । सच पूछो तो कोड के विरोध में स्वामीजी ने जो कार्य किया उसका लेखन इस पुस्तक में सम्भव ही नहीं है । इन्हीं महात्मा के सत्प्रयत्नों का यह परिणाम हुआ ही कि पं० नेहरू द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी इसे यथावत् पास नहीं किया जा सका और हिन्दुकोड बिल रद्दी की टोकरी में पड़ा सिसकता ही रह गया । स्वामीजी के जीवन का यह एक महान् कार्य था ।

'हिन्दूकोड' विरोधी धर्मयात्रा में स्वामीजी को अनेकों नये-नये सहयोगी एवं कार्यकर्त्ता मिले । काम भी खूब हुआ, परन्तु इस यात्रा में उन्हें पाश्चात्य शिक्षा सम्पन्न महिलाओं के तथाकथित 'आल इण्डिया वीमेन्स कान्फ्रेंस' नाम की एक संस्था का सामना करना पड़ा । यह संस्था कोड सम–र्थकों के इशारे पर नाचती थी एवं उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर स्त्रियों के नाम से नये-नये बखेड़े खड़े करती थी स्वामीजी ने अनुभव किया कि इस संस्था में भारतीयता की अनुगामिनी महिलाओं का प्रतिनिधित्व नाममात्र को भी नहीं हैं । जनवरी सन् १६४६ में जब वह मद्रास के व्यापक दौरे पर थे वहाँ उन्होंने कोड विरोध में स्त्रियों में बड़ा उत्साह देखा । अतः स्वामीजी ने एक 'अखिल भारतीय महिला संघ' की स्थापना की । इसका कार्य देवास सीनियर की परम विदुषी राजकुमारी श्रीमती प्रभावती राजे, श्रीमती शान्ति देवी वैद्या, श्रीमती विद्यावती तथा ऋषिकन्या चित्रा देवी आदि अनेक विदुषी महिलाओं को सौंपा गया और इस संस्था के कार्यों से तथोक्त 'कान्फ्रेंस' का नाम शेष रह गया । कान्सटीट्यूशन क्लब में आयोजित कोड विरोधी सम्मेलन में राजकुमारी जी के विद्वत्तापूर्ण भाषण के तर्कों से तत्कालीन कोड समर्थक नेतागण भी अत्यन्त प्रभावित हुए । स्वयं कांग्रेसाध्यक्ष श्री पट्टाभि सीतारमैया एवं पण्डित जवाहर लाल नेहरू पर भी राजकुमारी जी के कोड विरोधी तर्कसंगत विचारों का प्रभाव पड़ा परन्तु वे अपने रूख पर अड़े रहे ।

किन्तु स्वामीजी ने देखा कि लाख प्रयत्न करने पर भी तथा शास्त्रमत, लोकमत एवं तर्क-सम्मत होने पर भी उनकी मांगों पर ध्यान न देकर प्रगति के नाम पर सरकार हिन्दूकोड लादने पर तुली हुई है; बर्मा, लंका जैसे मांस भक्षी देशों में गोवध बन्द हो जाने पर भी भारत सरकार

भारत भूमि से गोवध का कलंक दूर करने को तैयार नहीं तथा कौटिल्य, कामन्दक, शुक्र, विदुर आदि की नीतियों के होते हुए भी विदेशी उच्छिष्ट सार समूह मात्र धर्महीन विधान इस धर्म प्राण भारत के ऊपर लादने को तुली बैठी है तो उन्होंने भी निश्चय किया कि भारतीयता के उपासक भारत के सच्चे प्रतिनिधियों को ही इन विधान सभाओं में भेजा जाय। अतः स्वामीजी ने 'रामराज्य परिषद' को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। उन्होंने देश में घूम-घूमकर इसकी सैकड़ों शाखाएँ स्थापित कीं तथा बालिग मताधिकार के आधार पर होने वाले चुनावों के लिये एक मंच तैयार किया।

भारत के नगर काशी, कलकत्ता, दिल्ली आदि स्थानों से प्रकाशित सन्मार्ग आदि दैनिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इन दिनों स्वामीजी के कार्य कलापों, विचारों का व्यापक प्रकाशन प्रचार एवं हुआ। इन पत्रों के माध्यम से स्वामीजी ने चिर प्रसुप्त हिन्दू जाति को सम्बोधित करते हुए उनसे 'कोऊ नृप होई हमहि का हानि' की नीति एवं इस उदासीनता को त्यागने की प्रेरणा की।

सन् १९५१ के चुनाव में रामराज्य परिषद एवं महिला संघ की ओर से -लगभग ३०० उम्मीदवार खड़े किये गये तथा कितने ही अन्य उम्मीदवारों का समर्थन भी किया गया। स्वामीजी उन सबके चुनाव-प्रचार में काफी प्रयत्नशील रहे। प्रेस और प्लेटफार्म दोनों ही से सैद्धान्तिक राजनीति का प्रचार स्वामी के माध्यम से खूब हुआ और इन सबके परिणाम स्वरूप इस अल्प आयु की संस्था को जितनी सफलता मिलनी चाहिये थी उतनी मिली भी किन्तु यदि हिन्दू हितों का दम भरने वाली तत्कालीन अन्य संस्थाएँ आपस में एक दूसरे से न टकरा जातीं तो आशातीत सफलता भी मिल सकती थी। राजस्थान, मध्य भारत की विधान सभाओं में रामराज्य परिषद प्रमुख दल के रूप में उभरकर आयी थी साथ ही अनेक संसद सदस्य भी उसके टिकट पर अथवा समर्थन पर केन्द्रीय संसद में सफल होकर पहुँचे थे।

राम राज्य परिषद के अधिकृत उम्मीदवार प्रायः बहुत जगह खड़े किये गये थे जिनकी संख्या लगभग ३५० थी। कई जगह हिन्दू विचार धारा के उम्मीदवारों के विरोध में परिषद के उम्मीदवारों के नाम वापिस ले लिये गये थे और उनसे अपने परिषद के प्रतिज्ञा पत्र भरवा लिये गये थे, वे रामराज्य परिषद द्वारा समर्थित कहलाये। दस फरवरी १९५२ के दैनिक सन्मार्ग दिल्ली से प्रकाशित सफल उम्मीदवारों की सूची आगे दी जा रही है, (बाद के अंक उपलब्ध न होने से पूर्ण सूची नहीं दी जा सकी है।)

दैनिक सन्मार्ग, नई दिल्ली, १० फरवरी १९५२

लोक सभा एवं धारा सभा के लिए :

परिषद के सफल उम्मीदवार

नाम	विवरण	निर्वाचन क्षेत्र	किसके लिए
१. सेठ तुलसीदास किला चन्द	समर्थित	बम्बई	लोक सभा
२. श्री बिजयभूषण सिंह जू देव	अधिकृत	जसपत नगर मध्य प्र०	धारा सभा
३. श्री पद्मराज सिंह जी	अधिकृत	पंडरिया	"
४. श्री वी० पी० सिंह जी	समर्थित	कंकेर	"
५. श्री गंगा प्रसाद	अधिकृत	कवर्धा	"
६. श्री राजा विजय सिंह जी	अधिकृत	उमरी	मध्यभारत धारासभा
७. श्री जमुना सिंह जी	"	अम्बाह	"
८. श्री बी० एस० मोरे	समर्थित	पंडरपुरमंगलखेड़ा	बम्बई धारा सभा
९. श्री मोहन मेना भाई राठौड़	"	कालौल	"
१०. सेठ श्री रामदास किला चन्द	"	पाटनचनसमाहरीज	"
११. युवराज श्री दलजीतसिंह	"	ईडर	"
१२. श्री मोहरसिंह राठौड़	"	बरिया	"
१३. श्री पोपट लाल जोशी	"	डीसाधनेरा	"
१४. सेठ श्री पुरुषोत्तमदास पटेल	अधिकृत	कड़ी	"
१५. अदेजा श्री चन्द्रासिंहजी दीपसिंहजी	समर्थित	कालाबाद ध्रोल	सौराष्ट्र धारासभा
१६. मौर्वी महाराजकुमार श्री कालिका कुमार जी	समर्थित	मौर्वी	"
१७. डा० शिवदान सिंह	"	मानोली	राजस्थान धारासभा
१८. ठा० भीमसिंह	अधिकृत	नवलगढ़	"
१९. ठा० तानसिंह	"	बदमेर	"
२०. राजाधिराज अमरसिंह	समर्थित	शाहपुरा	"
२१. माधो सिंह	अधिकृत	जालौर	"
२२. श्री मान सिंह	अधिकृत	जामवा रामगढ़ (जयपुर)	"

नाम	विवरण	निर्वाचन सभा	किसके लिए
२३. श्री देवी सिंह	अधिकृत	उदयपुर (राजस्थान)	धारा सभा
२४. श्री जयेन्द्र सिंह जी	,,	झालवा	,,
२५. श्री गंगासिंह जी	,,	नागौर पूर्व	,,
२६. श्री देवराज जी	,,	पीपलडा क्षेत्र	,,
२७. श्री चन्द्रकांत	,,	आंता मांग्रोज कोटा क्षेत्र	,,
२८. श्री रावराजा सरदार सिंह	,,	उनियारा क्षेत्र	,,
२९. श्री केशरी सिंह	,,	नागौर पश्चिमी क्षेत्र	,,
३०. श्री ठाकुर रघुवीर सिंह	,,	खेतरी	,,
३१. श्री केसरी सिंह	,,	पाटन	,,
३२. श्री भोपाल सिंह	,,	मेड़ता पूर्व	,,
३३. श्री मोतीराम	,,	सैवेना	,,
३४. श्री हरिराम	,,	भीलवाड़ा	जयपुर लोक सभा
३५. श्री सज्जन सिंह	,,	हिन्डौना	राजस्थान धारा सभा
३६. श्री छत्त सिंह	समर्थित	जसवन्तपुरा	,, ,,
३७. श्री अश्विनी कुमार	अधिकृत	भागी	,, ,,
३८. श्री मदन मोहन	,,	प० बतसर	,, ,,
३९. श्री भेरु सिंह	समर्थित	बाली देसूरी	,, ,,
४०. श्री हिम्मत सिंह जी	अधिकृत	जातूर कोटा	,,
४१. श्री पं० नन्दलाल शास्त्री	,,	सीकर (राजस्थान)	लोक सभा
४२. श्री लक्ष्मण सिंह	समर्थित	सावन	अजमेर प्रदेश
४३. श्री महेन्द्र सिंह	,,	नसीराबाद	,,
४४. श्री राजाकौशलेन्द्र प्रतापसिंह	अधिकृत	कोठी	विंध्य प्रदेश
४५. श्री भुवनेश्वर प्रसाद	,,	पनुमाना	,,
४६. श्री राम बिलास सिंह	,,	बरहरा (जिला शाहाबाद)	बिहार धारासभा
४७. रूपनारायण	,,	नीमकाथाना (सीकर)	राजस्थान धारासभा
४८. श्री रघुराज सिंह	,,	किशनगंज कोटा	,,
४९. श्री अमनप्रसाद	,,	अम्बा	मध्य भारत
५०. श्री गजाधर सोमानी	,,	नागौर पाली (राजस्थान)	लोक सभा

समस्त समर्थित उम्मीदवारों ने रामराज्य परिषद के प्रतिज्ञा-पत्रों को पहले से ही विधिवत् भर रखे थे। अतः वे सब रामराज्य परिषद के ही उम्मीदवार थे।

स्वामीजी का निरन्तर प्रयास जारी रहा; जहाँ भी अधर्म, अन्याय, अनीति, अनर्थ दीखता वे उसका तत्काल यथाशक्ति डट कर विरोध करते रहे। यद्यपि प्रत्येक चुनाव में स्वामीजी अपनी सैद्धान्तिक राजनीति की बात उसी उत्साह के साथ जनता के समक्ष रखते रहे जिस प्रकार गत ३२ वर्षों से रखते रहे थे; वर्तमान समय में भारत में उनके जैसा भारतीय राजनीति का पण्डित एवं निर्भीक निस्पृह, निःस्वार्थ वक्ता दूसरा नहीं दीखता परन्तु वाहरी ! अभागी हिन्दू जाति ऐसे सिद्ध, त्यागी, तपस्वी, मनस्वी नेता का नेतृत्व प्राप्त होते हुए भी तेरी कुम्भकर्णी निद्रा अभी भंग नहीं हुई है। इसे कलियुग का प्रभाव कहे या देश का दुर्भाग्य कि आज सिद्धांतहीन, दिशाहीन एवं उच्छृंखल राजनीति के फेर में पड़कर देश की जनता बिलबिला रही है और उसमें शुद्धता, साधुता, सात्त्विकता, धार्मिकता, नैतिकता, त्याग इत्यादि के सक्रिय प्रवेश की बात कहने वाला सर्वस्व त्यागी विरक्त, वर्तमान राजनीति का चाणक्य और उसकी विचारधारा आज पूर्णतः उपेक्षित है फिर भी वह उसी अदम्य उत्साहपूर्वक राष्ट्र की सेवा में प्राणपण से अहर्निश लगे रहे इस आशा से कभी तो भारतीय राजनीति वर्तमान भोगवाद सिद्धान्तहीनता, अस्थिरता एवं आपाधापी के गर्त से उबरेगी ही।

"गुरूजी मिलन"

राजधानी की तड़क-भड़क से दूर निगमबोधघाट यमुना तट की बालुकामयी धरती पर कुछ फूस की झोपड़ियाँ क्रमबद्ध खड़ी हैं; इन्हीं में दिल्ली का महायज्ञ की स्मृति स्वरूप श्री धर्मसंघ महाविद्यालय चलता है। गौवें बन्धी है, औषधालय है, पुस्तकालय है, सत्सङ्ग-कथा मण्डप है सभी कुछ घास-फूंस, बाँस चटाइयों से बने हैं। इन्हीं में से एक कुटिया में धर्म सम्राट वीतराग महात्मा स्वामी श्री करपात्री जी महाराज एक लकड़ी की चौकी पर मध्याह्नोत्तर अर्चा पूजा में रत हैं। २३ अगस्त १९४९ का मध्याह्नोत्तर काल है। सहसा श्वेत कुर्त्ता-धोती पहिने काली दाढ़ी एवं लम्बे केश धारण किये एक भव्य मूर्ति ने प्रवेश किया तो उपस्थित व्यक्तियों ने धर्म की जय के साथ उच्च स्वर से उनका स्वागत किया। कथा—मण्डप में आगे बढ़कर स्वयं गैरिक वस्त्रधारी, गौरवर्ण के ४२ वर्षीय तरुण सन्यासी ने उनका स्वागत किया। स्वामी जी का दर्शन होते ही गुरूजी ने पूर्ण भक्ति भाव के धरती पर लेटकर साष्टांग प्रणाम-नमस्कार किया। मण्डप में अ० भारतीय धर्मसंघ, अ० भा० हिन्दू कोड विरोध समिति, अ० भा० रामराज्य परिषद, की ओर से संस्कृत में मानपत्र दिये गये, जिनमें गुरूजी को अभिनवशिवाजी कहकर सम्बोधित किया गया था। रा० स्व० से० संघ के सरसंघ चालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवालकर जी ने कहा कि 'धर्म के सम्बन्ध में आप समर्थ गुरू रामदास का स्थान रखते हैं, मैं तो छत्रपति की भाँति आपके निर्देशों का अनुपालक मात्र हूँ'.........'सामने एक हिन्दू संस्कृति का बक्स रखा है, उसके भीतर क्या है, यह हम नहीं जानते, उसकी व्याख्या महात्मा लोग करेंगे, स्वामी करपात्रीजी करेंगे, हमारा कार्य तो इतना ही है कि उस बक्स पर कोई गुण्डे, बदमाश, चोर, डाकू, कुत्ते आदि हमला नहीं करने पायेंगे। हम लोग उसकी रक्षा करेंगे।'

अनन्तर गुरूजी स्वामीजी के साथ उनकी कुटिया में गये जहां २० मिनट तक दोनों के मध्य एकान्त वार्ता हुयी। दण्डवत् प्रणाम के पश्चात् स्वामीजी से प्रसाद ग्रहण कर उसे कमर की फेंट में बांधते हुए गुरूजी ने कहा कि 'मैं इसे अकेला नहीं अपितु सारे राष्ट्र को बांट कर खाऊंगा। स्वामी जी वह गुरुजी वार्ता के अनन्तर साथ-साथ कुटिया से बाहर निकले। उपस्थित जनसमुदाय ने धर्म के जयघोषपूर्वक धर्म सम्राट-गुरूजी के इस ऐतिहासिक मिलन का अभिनन्दन किया। उसी समय का एक अनुपम चित्र यहां प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सका है।

परन्तु यह भी एक स्पष्ट सत्य है कि पूज्य गुरूजी और स्वामी श्री करपात्रीजी के मध्य एकमत्य अन्त तक नहीं रह सका। उनकी पुस्तक 'विचार नवनीत' से गुरूजी के विचारों की स्पष्ट झलक पाकर राष्ट्र ने जो आशा बांधी थी कि समर्थ स्वामी गुरू रामदास एवं छत्रपति शिवाजी के समान स्वामी करपात्रीजी एवं पूज्य गुरूजी की विचारधारा सैद्धान्तिक रूप से एक होकर अन्ततोगत्वा राष्ट्र कल्याण में सहायक होगी, पूरी न हो सकी और करपात्रीजी महाराज को 'विचार नवनीत' की समालोचना में 'विचारपीयूष' लिखकर तथ्यात्मक और सत्यात्मक विवेचन विचारकों के समक्ष रखना पड़ा। वैसे गुरूजी की निष्ठा पूज्य करपात्रीजी महाराज में अन्त तक बनी रही परन्तु वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रश्न पर स्वामीजी को वेदशास्त्रानुमोदित सत्य सिद्धांत से तनिक भी विचलित नहीं किया जा सका—इसका स्पष्ट आभास उनके विशाल विचार ग्रन्थ 'विचारपीयूष' से मिलता है।

●

"सर्वज्ञ परमेश्वर 'शासक' है, उनका 'शासन' ही अकृत्रिम वचन रूप वेद है; उनअन्नादि अपौरुषेय मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद एवं तन्मूलक स्मृति-पुराणादि सद्ग्रन्थों में वर्णित वैदिक मार्ग ही कल्याण का निष्कण्टक मार्ग है।"

: विभिन्न कार्य :

"ज्योतिषपीठ"

स्वामीजी के दीक्षा गुरू ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरू शंकराचार्य श्री १००८ स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी २ मई, १९५३ को कलकत्ते में ब्रह्मीभूत हुए । उन्हें काशी में जल समाधि दी गयी । अब प्रश्न था मठ के रिक्त पीठ स्थान की पूर्ति का । स्वामीजी ने देखा कि ज्योतिर्मठ की गद्दी १६५ वर्ष पश्चात् सन् १९४१ में तो पुनः स्थापित हुई थी जब अथक् परिश्रम एवं खोज के उपरान्त पूज्य गुरूदेव को बड़े आग्रह एवं अनुनय विनय पूर्वक इस पीठ को गौरव प्रदान करने के लिये पीठारूढ़ किया गया था । किन्तु अब बारह वर्ष बाद पुनः रिक्त हो गयी अतः इस पर किसी योग्यतम सन्यासी को ही अभिषिक्त करना चाहिये । सब की दृष्टि पूज्य स्वामी करपात्री पर थी कि वह ही ब्रह्मीभूत शंकराचार्यजी के पट्ट शिष्य हैं और उन्होंने एक सभा में कहा भी था कि 'करपात्री मेरा उत्तराधिकारी है ।' काशी विद्वत् परिषद, अ० भा० धर्मसंघ, श्री शंकराचार्य शिष्टमण्डल, पूज्य महात्माओं, विद्वानों एवं प्रतिष्ठित सम्भ्रान्त नागरिकों की एक सभा काशी में हुई जिसके निर्णयानुसार एक शिष्टमण्डल पूज्य करपात्रीजी की सेवा में इस पद को स्वीकार करने की प्रार्थना के साथ उपस्थित हुआ परन्तु वे धर्मसंघ, रामराज्य परिषद इत्यादि के व्यापक कार्यक्रम को करते हुए इधर पर्याप्त समय नहीं दे सकते थे और इसी कारण इससे अपने एक मात्र ध्येय जनता जनार्दन एवं धर्म की सेवा में एक सीमा तक रुकावट पड़ने की सम्भावना से उन्होंने स्वयं इससे पृथक ही रहने का निश्चय किया ।

उधर भारत के विद्वन्मण्डल एवं साधु समाज ने एक मत से निर्णय किया कि पूज्यपाद परम वीतराग स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज को ही ज्योतिष्पीठ पर अभिषिक्त किया जाय । यद्यपि वे इसके लिये इच्छुक नहीं थे, उन्होंने मना भी कर दिया परन्तु फिर भी श्री स्वामी करपात्री जी के विशेष आग्रह पर आपने ज्योतिष्पीठ का आचार्य पद स्वीकार कर लिया और लगभग बीस वर्ष तक बड़ी योग्यतापूर्वक पीठ का संचालन एवं आद्य श्री शंकराचार्य जी के सिद्धान्त एवं परम्परा को वर्तमान भीषण काल में बड़ी ही योग्यता पूर्वक आगे बढ़ाते हुए पीठ को गौरवान्वित किया । परन्तु १० सितम्बर १९७३ की सायंकाल ७ बजकर ३० मिनट भाद्रपद शुक्ल त्र्योदशी विक्रमाब्द २०३० को आप ब्रह्मलीन हो गये अतः एक बार पुनः स्वामीजी के समक्ष ज्योतिष्पीठ के पद पर सुयोग्य विद्वान सन्यासी को अभिषिक्त कराने का अवसर उपस्थित हुआ । ब्रह्मलीन जगद्गुरूजी की अन्तिम मन्त्रणा एवं महाराज श्री की प्रेरणा से परम वीतराग दण्डी सन्यासी श्री स्वामी

स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के नाम को काशी विद्वत परिषद एवं अन्य सभी मान्य धार्मिक संस्थाओं ने स्वीकार करते हुए उन्हें ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरू शंकराचार्य के पद पर अभिषिक्त किया गया। अनन्तर दिल्ली, जोशीमठ आदि अनेक स्थानों पर महाराज के पट्टाभिषेक समारोह सम्पन्न हुए। जगद्गुरूजी ने ज्योतिष्पीठ के कार्य क्षेत्र में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से धर्म कार्य को आगे बढ़ाया है।

तात्पर्य यह है कि उत्तराम्नाय ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम के रिक्त पीठ के लिये तीन बार योग्यतम विद्वान, निस्पृह, विरागी, दण्डी सन्यासी को खोजकर अभिषिक्त करा देने का कार्य आज के धर्म विहीन समाज के लिये भले ही कुछ महत्व न रखता हो परन्तु धार्मिकों के लिये यह स्वामीजी के जीवन की वह अद्भुत घटना है जिसके लिये वह सदा ही उनकी ऋणी रहेगी।

"बुद्ध जयन्ती"

१९५६ ई० में भारत की कथित सैक्यूलर सरकार द्वारा २४०० वीं बुद्ध जयन्ती मनायी गयी और जनता का करोड़ों रुपया उस पर व्यय किया गया। स्वामीजी ने कड़े शब्दों में स्पष्ट रूप से इस सरकारी तराजू के पासंगे की आलोचना की। उन्होंने कहा कि 'एक ओर बुद्ध के शिष्यों की अस्थियों का राजकीय सम्मान हो रहा है और भगवान् राम का जन्म स्थान अभी भी हिरासत में है। भगवान श्रीकृष्ण की जन्म भूमि एवं विश्व प्रसिद्ध ज्ञानवापी स्थित काशी विश्वनाथ मन्दिर के कुछ भाग पर मस्जिद के रूप में आज भी विधर्मियों का अधिकार बना है क्या यही धर्म पक्षपात विहीनता है।

"साधु संघ"

सरकारी प्रचार करने एवं जनता की धार्मिक भावनाओं से स्वार्थ सिद्धि करने के प्रयोजन से सरकार ने अ० भा० साधु समाज नामक संस्था को जन्म दिया। स्वामीजी ने इसका भी फण्डाफोड़ करने और सरकारी साधु एवं सच्चे साधु का विभेद करने के प्रयोजन से 'अ० भा० साधु संघ की स्थापना की और जनता को सरकारी साधुओं से सचेष्ट रहने का आदेश दिया।

"धर्म यात्राएँ"

प्रश्न चाहे महा पंजाब समिति की माँगों का हो या होशियार पुर काण्ड का—जिसमें सरकार ने निरीह स्त्री-बच्चों तक पर लाठी प्रहार किया था, स्वामीजी ने कभी अन्याय अथवा अधर्म के आगे गर्दन नहीं झुकाई, वरन् उसका खुलकर प्रतिकार एवं विरोध ही किया। कभी बौद्ध नास्तिक-वाद का विरोध तो कभी साधु रजिस्ट्रेशन बिल का विरोध, कभी मन्दिर प्रवेश के विषय पर चुनौती